क-दिवस 1973

धूप के पखेरू

संपादक :

शिवरतन थानवी

पुरुषोत्तमलाल तिवारी

प्रकाशक

माया प्रकाशन मन्दिर
त्रिपोलिया बाजार
जयपुर-२

O

शिक्षा विभाग, राजस्थान के लिए
शिक्षक दिवस (५ सितम्बर ७३)
के अवसर पर प्रकाशित

आवरण :

मोहन शर्मा

O

वर्ष : १९७३

मूल्य : पाँच रुपये पिचहत्तर पैसे

मुद्रक :

मॉडर्न प्रिन्टर्स
गोधों का रास्ता,
जयपुर-३

धूप के पखेरू * कविता-संग्रह

आमुख :

राष्ट्र-निर्माण के कार्यों में शिक्षक की भूमिका निर्विवाद है। समाज शिक्षक के प्रति अपनी कृतज्ञता अर्पित करने की दृष्टि से प्रति वर्ष शिक्षक-दिवस का आयोजन करता है।

शिक्षा विभाग, राजस्थान इस अवसर पर शिक्षकों का सम्मान कर उन्हें राज्य स्तर पर पुरस्कृत करता है और उनके कार्यकारी जीवन के सृजनशील क्षणों को संकलनों के रूप में प्रकाशित करता है।

इन संकलनों में शिक्षकों की क्रियाशील अनुभूतियाँ, साहित्य-सर्जना के अविरल भारतीय प्रवाह में उनकी संवेदनशीलता तथा सामाजिक-सांस्कृतिक समकालीनता के स्वर मुखरित होते हैं और उन्हें यहाँ एकस्थ रूप में देखा और पढ़ा जा सकता है।

सन् 1967 से विभागीय प्रवर्तन द्वारा सृजनशील शिक्षकों की रचनाओं के प्रकाशन का जो उपक्रम एक संग्रह के प्रकाशन से आरम्भ किया गया था, वह अब प्रतिवर्ष पाँच प्रकाशनों की सीमा तक पहुँचा है। प्रसन्नता की बात है कि भारत-भर में इस अनूठी प्रकाशन-योजना का स्वागत हुआ है और उससे सृजनशील शिक्षकों की अभिरुचियों को प्रखरतर होने की प्रेरणा मिली है।

सन् 1972 तक इस प्रकाशन-क्रम में 22 पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं और इस माला में इस वर्ष ये पाँच प्रकाशन और सम्मिलित किए जा रहे हैं :

1. खिलखिलाता गुलमोहर (कहानी-संग्रह)
2. धूप के पखेरू (कविता-संग्रह)
3. रेजगारी का रोजगार (रंगमंचीय एकांकी-संग्रह)
4. अस्तित्व की खोज (विविध रचना-संग्रह)
5. जूनां बेली : नुवां बेली (राजस्थानी रचना-संग्रह)

राजस्थान के उत्साही प्रकाशकों ने इस योजना में आरम्भ से ही पूरा-पूरा सहयोग प्रदान किया है। इसी प्रकार शिक्षकों ने भी अपनी रचनाएँ भेज कर विभाग को सहयोग प्रदान किया है। इसके लिए लेखक तथा प्रकाशक दोनों ही धन्यवाद के पात्र हैं।

आशा है, ये प्रकाशन लोकप्रिय होंगे और सृजनशील शिक्षक अधिकाधिक संख्या में अगले प्रकाशनों के सहयोगी बनेंगे।

र. सिं. कूमट
निदेशक

शिक्षक-दिवस, 1973

अनुक्रम

कविता

गीत तथा गजल

GO

आदमी पत्थर नहीं

रविशंकर भट्ट

अपने ही महलों में सोता
अपने ही सपनों में जीता
धारा का मटमैला पानी
बहता बहता
यह गंगा का नीर नहीं
आदमी पत्थर नहीं

महकते गुलाब की
गीली पंखुड़ियों में सोया
किरण करों की छाया में
शबनम पिरोया
रूप रंगों के परिधानों में
जीवन के मीठे भावों में
असीम
यह डोर बँधा बिस्तर नहीं
आदमी पत्थर नहीं

चलता जाता
अपनी ही राह बनाता
सतरंगी ताने-बाने में
हँसता गाता
कहीं फैल गया
कहीं सिमट गया
सपनों की गीली धरती पर
कहीं फिसल गया
कोई व्यवसायी दफ्तर नहीं
आदमी पत्थर नहीं

कहीं पीड़ा की चादर आँखों पर
कहीं वृक्षों की ऊँची शाखों पर
निष्काम
कहीं निर्विकार
कहीं सकाम दुर्निवार
कोई अन्तर नहीं
आदमी पत्थर नहीं

शिक्षक वर

म०रा० गाजरे

भावी पीढ़ी के
निर्माता !
कर्ता–धरता
देश के भाग्य विधाता !
शिक्षा का वर्तमान रूप
छात्र, तेरा ही प्रतिरूप
किन्तु आज उसका
यह भयंकर स्वरूप............
क्या तुझे सोचने को
वाध्य नहीं करता....?
तेरे मन मस्तिष्क का
नव मथन
नव स्वर का
नव गूँजन
नव वीणा के
नये तारों को
झंकृत नहीं करता........?

एतदर्थ
जाग, उठ, चल
बदल और बढ़
निज लक्ष्य को
चरम सीमा पर चढ़
फूँक दे वह शंख
गूँज उठे जिसका रव
भारत की
पावन धरती पर
जीर्ण–शीर्ण, जर्जरित
विचारों को
परिवर्तित कर—
स्वतन्त्रता व समानता का
नूतन समाज
निर्मित कर
क्योंकि तू है
"शिक्षक वर" ।

•

एक सवाल

सांवर दइया

प्रयोगशाला में बैठे वैज्ञानिकों !
तुम यह ज्ञात करने में तो जुटे हो
कि अमुक ग्रह विस्फोट से
प्राप्त होने वाली ऊष्मा
ऊर्जा में परिवर्तित करने पर
असंख्य वर्षों तक उपयोग में लायी जा सकती है—
मानव-हित के लिए
अथवा सृष्टि विनाश के लिए ।

लेकिन
कभी यह भी सोचा है तुमने
कि आदमी के दिल में छिपी घृणा
सृष्टि का विनाश कितनी बार कर सकती है ?
कि आदमी के हृदय में बहती प्रेम-सरिता
सृष्टि पर कितने स्वर्ग बसा सकती है ?

लेकिन डरता हूँ

खून तो मेरा भी गर्म है
लेकिन डरता हूँ
आस-पास जमी हुई बर्फ से !
[तुम मेरे चूल्हे में बर्फ डालकर
अपना चूल्हा जलाना चाहते हो—
मुझे ईंधन के रूप में इस्तेमाल करके !]

आवाज तो मेरी भी बुलन्द है
लेकिन डरता हूँ

आस-पास खड़े अवसरवादियों से ।
[तुम मेरे कन्धे पर बन्दूक रखकर
शिकार करना चाहते हो —
अपने हाथ खून से रंगे बिना ही !]

सीना तो मेरा भी फौलादी है
लेकिन डरता हूँ
अपने पीछे खड़ी बालू-दीवार से ।
[तुम मुझे शहीद बनाकर
मेरी प्रतिमा बनवाने की आड़ में
अर्थोपार्जन करना चाहते हो !]

झण्डे तो मैं भी उठा सकता हूँ
लेकिन डरता हूँ
आस-पास खड़े चमचों से ।

[तुम मुझे निकाल फेंकना चाहते हो—
दूध में आ गिरी मक्खी की तरह ।
और खुद सरकार बनकर घुसना चाहते हो !]

•

इस सभ्य समाज में

अब तक औरों के ही हाथों में
झण्डे थमाये मैंने
झण्डा थामकर आगे नहीं चला मैं ।
[आगे चलने में खतरा रहता है
और खतरा मोल लेना समझदारी नहीं—
कम-से-कम इस सभ्य समाज में !]

अब तक औरों के ही सिरों पर
टोपियाँ रखी मैंने
टोपी पहन कर मंच पर नहीं आया मैं ।

[एक ही रंग की टोपी बदलती सुविधाओं के हक में नहीं है
और असुविधाओं को न्यौतना समझदारी नहीं—
कम-से-कम इस सभ्य समाज में !]

व्यवस्था-विरोधी बातें
औरों के माध्यम से करवायी मैंने
स्वयं तो सदा समझौता-परस्त रहा ।
[समझौता न करना अवसर खोना है
और अवसर खोना समझदारी नहीं—
कम-से-कम इस सभ्य समाज में !]

क्यू..'

मोड़सिंह 'मृगेन्द्र'

ऐ दोस्त,
तुम मेरे पीछे खड़े हो
मुझे धक्का न मारो !
द्वेष व घृणा से
मुझ पर मत थूंको !
जरा देखो तो........
मैं भी किसी के पीछे खड़ा हूँ !
और सुनो
तुम्हारे पीछे भी कोई खड़ा है !

जगत क्यू में खड़ा है
क्यू से चल रहा है
आगे पीछे वालों का ख्याल करो।
तुम्हारी जरा सी हरकत पर
कितने लोग, मुँह के बल
गिर पड़ेंगे !

यह न समझो
'तुम आगे हो....!'
तुमसे आगे भी बहुत हैं।
'पीछे रह गये हो ?'
नहीं, तुमसे पीछे भी बहुत हैं !

ऐ दोस्त, तुम
विश्वी सांकल की
एक महत्वपूर्ण कड़ी हो
धक्कम पेल न करो
जरा सोचो........
और भी हैं जो सर्वगुण सम्पन्न हैं
पर तुमसे न विलंघित ।
ऐ दोस्त
आहिस्ता बोलो
ताकत न तोलो
क्योंकि हम मानव हैं
और न पैदा करो
पहले से यहाँ कई दानव हैं।

तैर रहा है
और छठा
सातवाँ, सत्रहवां, सत्तरवाँ
सौ वाँ,
यही हैं वो देश जो मैंने देखे हैं !
और यह सब
तुम्हारे बनाये
तुम्हारे बताये नक्शों पर चल कर
पाया है मैंने
सही होगा अगर कहूँ
हम सबने !

इनके अतिरिक्त मुझे दीखा है
एक जंगल
धधकता हुआ, भागता हुआ
हाँफता हुआ
जंगल।
जंगल
जिसकी जलती परिधि को
उलांघ नहीं पाया मेरा बोझुआ
अहसास !
दूर से देखा मैंने
खण्ड खण्ड जलती हुई आग
आग में झड़ती हुई
धनीमानी पेड़ों की
कोमलांगी पत्तियाँ, टहनियाँ
और
सारी की सारी
जमीन से चिपकी हुई वनस्पतियाँ
हड्डियों के चटखने की
निरन्तर आवाजें, और आवाजें
पक्षियों के भुनते हुए
गोश्त की !

तब सचमुच लगा मुझे
कि पहले, जो जंगल टूटकर
जुड़ता था
अब
जुड़कर जलने और
जल कर
टूटने लगा है !
इस महँगाई की तरह बढ़ती
आग में
घिरने पर
कहाँ रही फुर्सत
तुमसे नये नक्शे मँगवाने की !
और अब तो
हर पगण्डडी
खो गई है मुझसे
और मैं, असहाय, तुम्हें
पुकार रहा हूँ
ओ मेरे दिग्दर्शक
तुम्हारा दिया अतीत जड़ है
वर्तमान बेहोश
तो फिर भविष्य सजीव क्यों ?
इतिहास बदला है
तो फिर भूगोल क्यों नहीं ॥

रक्त-सन्दर्भ

दुश्मन ने, मेरी बाड़ में
आग लगा दी है
मेरे हाथ में बाल्टी और पास ही
पानी का हौज भी है
मगर मैं निश्चेष्ट हूँ
मेरे सामने
यार्ड में खड़ी ट्रेन के सभी

डिब्बों की
सभी बत्तियाँ
जल रही हैं, जिन्हें बुझाने से
करों की भीगी रेत से भरे
बोरे का भार
बहुत थोड़ा ही सही
मगर, कम तो हो सकता है
किन्तु मैं तब भी निष्क्रिय हूँ।
अभी मेरे सामने
चौराहे पर एक कार
मार कर टक्कर
होटल के छोकरे को
चली गई है
पुलिस मैन ने कार वाले
को सलाम किया है
और चोट खाये बालक की पीठ पर
डंडा जड़ दिया है
फिर भी मैं निःशब्द हूँ।
केदार के हाथों पिटकर
मर गये मजदूर की बीबी
चीखती है
उसकी चीखें ले तो जाती हैं मुझे
गवाह के कठघरे तक
मगर उसके बाद मैं निर्वाक हूँ।
मेरी यह निष्क्रियता
मेरा मौन
अकारण नहीं है!
पढ़ा है मैंने
सुना है बहुत, मेरे
रक्त में
राम, कृष्ण, शिवा, प्रताप
युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम
हनुमान

डिब्बों की
सभी बत्तियाँ
जल रही हैं, जिन्हें बुझाने से
करो की भीगी रेत से भरे
बोरे का भार
बहुत थोड़ा ही सही
मगर, कम तो हो सकता है
किन्तु मैं तब भी निष्क्रिय हूँ।

अभी मेरे सामने
चौराहे पर एक कार
मार कर टक्कर
होटल के छोकरे को
चली गई है
पुलिस मैन ने कार वाले
को सलाम किया है
और चोट खाये बालक की पीठ पर
डंडा जड़ दिया है
फिर भी मैं निःशब्द हूँ।

केदार के हाथों पिटकर
मर गये मजदूर की बीबी
चीखती है
उसकी चीखें ले तो जाती हैं मुझे
गवाह के कठघरे तक
मगर उसके बाद मैं निर्वाक हूँ।

मेरी यह निष्क्रियता
मेरा मौन
अकारण नहीं है!
पढ़ा है मैंने
सुना है बहुत, मेरे
रक्त में
राम, कृष्ण, शिवा, प्रताप
युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम
हनुमान

गजल [अकाल पर]

अंगरा रही है रेत को ज्वर की जलन,
घुल गये, आकाश के, बागी हिरन ॥
रिक्त आमाशय की कोरी भित्ति पर,
भूख ने लिखा, प्रलय का प्राक्कथन ॥
निर्रवमिया वादे तो सहते आये हैं,
किस तरह सह लें, धरा का बांझपन ॥
चाटता है दिन, औंधी उपेक्षित हांडियाँ,
घूँटती है रात, विष के आचमन ॥
आह! न मिलते-पार्थ के बेजोड़ शर,
हाय! न मिटती भीष्म देही की तपन ॥
दूर बादल धूल के दृष्टि में उड़ते रहे,
[illegible] ॥
[illegible], होगा और भी,
[illegible] का संकलन ॥

मरी हुई नदी के लिए

भगवतीलाल व्यास

यह नदी मर गई है ।
हाँ, नदी मर गई है
अब बहस फिजूल है कि
हम उसका उद्गम-स्थल ज्ञात करें
या उसके नाम के सही हिज्जों के लिए
भाषा-शास्त्रियों की समिति
नियुक्त करें ।
कोई नारा, अनशन या जुलूस
इस मरी हुई नदी में प्राण-प्रतिष्ठा
नहीं कर सकता
नदी की दिवंगत आत्मा के लिए
कोई शोक प्रस्ताव पारित करें
या न करें
सरकारी दफ्तर लंच के बाद
बंद हों या अल सुबह
इससे कोई फर्क नहीं पड़ता
कम से कम उसके लिए
जो मर गया है ।
जानते हो कोई नदी
जब भी मरी है
अपने पीछे भूमि पर
एक लम्बी दरार छोड़ गई है
इस दरार पर बने पुल से
लोग गुजरते हैं
तो उन्हें वहाँ अपनी परछाइयाँ
गटर के कीड़ों सी रेंगती
दिखाई देती हैं

क्योंकि नदी की दरार में लोगों ने
सार्वजनिक गन्दे पानी की नालियों का
रुख कर दिया है
(लोगों को दरार से बड़ा
भय लगता है और वे
उसमें कुछ भी बहते देखना
पसन्द करते हैं।)
हाँ, हाँ यह बिलकुल सच है
कि नदी मर गई है
अब जो कुछ है नदी के नाम पर
वह सार्वजनिक गन्दगी के सिवा
कुछ भी तो नहीं
तुम चाहो जिस विशेषण से इसे
उपमित कर लो
लेकिन नदी मर चुकी है।

चौराहे पर

भगवतीलाल व्यास

कल इस चौराहे पर
तरह-तरह के लोग
समूहवाचक संज्ञा बनकर
पलकों पर टूटा हुआ
आकाश लिए जमा थे,
उस नेता की प्रतीक्षा में—
कहते हैं, जिसके भाषण मात्र से
आकाश की दरारें पट जाती हैं
कागज़ के फूल शोख़ हो उठते हैं
और जाने क्या-क्या हो जाता है।
तो मैं कह रहा था—
लोगों के हाथ
अतिरिक्त उत्साह से हिल रहे थे

और उनके मुँह कई बार
जयकार की जुगाली कर चुके थे।
आज भी इस चौराहे पर लोग जमा हैं
और युद्ध से लौटी हुई
एक पूरी की पूरी यूनिट
गुज़र रही है उनके सामने से
वाहनों में बचा हुआ राशन,
टूटा सरजाम और एक
साबुत हौसला सवार है।
पर चौराहे के गले में
टॉन्सिल उभर आये हैं और
वह कोई जयध्वनि नहीं कर रहा है
लोगों की फटी-फटी आँखें
असम्पृक्त भाव से मिलती हैं
वाहनों में सवार जवानों की आँखों से
और वहाँ लिखी बेशुमार कहानियों को
बिना पढ़े ही लौट आती हैं।
मेरे देश के बालकों ने अब तक
नेताओं के उजले चित्रों वाली
किताबें पढ़ी हैं।
कब पढ़ेंगे वे जवानों की आँखों में
लिखी कहानियाँ
और कब चौराहे पर जमा भीड़

पुनर्जन्म

मुख्तार टोंकी

युगों युगों से
यह होता आ रहा है
शताब्दियों से
संसार की यह नीति है
यह रीति है
जो सत्य का उद्घाटन करे
उसको मिल जाती है सलीब
जो तथ्य कोई प्रकट करे,
विवश है,
विप का प्याला, वह पीने के लिये
ससार वालो !
छोड़ दो इस नीति को
तोड़ दो इस रीति को
अन्यथा,
यह कृपा करो
मुझे भी तुम जहर का जाम दो
जान लो !
और अच्छी तरह पहिचान लो
अब भी जीवित है,
समय का सुकरात !! °

अतीत का गौरव

कालान्तर हो चुका है
अतीत वर्तमान में खो चुका है
फिर भी मैं तो देखता हूँ
यह दृश्य,

कुण्ठित धारणाओं की
सड़ी-गली आस्थाओं की
लोग कुछ अर्थी उठाये,
या घिसे-पिटे विचारों का
कुछ पुरातन संस्कारों का,
जनाजा अपने कन्धे पर रखे
थके हारे सभी, बोझ से बिल्कुल दबे,
व्यर्थ यूँ ही घूमते हैं,
सोचता हूँ !
मौत के निश्चित समय पर
लोग अपने प्रियजनों को
पिता और पुत्रों को
चढ़ा देते हैं चिता पर
और मिट्टी में मिला देते हैं उनको
कोई तो कारण है !
रूढ़ियों की यह अर्थी
यह जनाजा
क्यों जला नहीं सकते ?
क्यों भूमि में दबा नहीं सकते ?
निरर्थक तर्क का
कोई उल्लू चीखता है
इस प्रकार मुझ को कोसता है
"अरे ! पागल !!
रूढ़ियों की यह कोई अर्थी नहीं है
संस्कारों की सड़ती हुई मय्यत नहीं है
यह तो है अपने अतीत का गौरव
अतीत का गौरव !"

उपलब्धि

सीमित परिवार
सुख का आधार
अगला बच्चा अभी नहीं
तीन के बाद कभी नहीं
हम दो
हमारे दो
पढ़ते हैं शिशु नादान
इन ब्रह्म वाक्यों से
उन्हें मिलती हैं नई दिशाएँ
नये आयाम !
नया ज्ञान !
बागों के घने कुंजों में
क्लबों में, रेस्तूरानों में
सुनसान सड़कों पर
और कालिज के अहातों में
मिल जाती हैं लड़कियाँ अनजान
आँखों में रूप की धूप लिये
पर्सों में लूप लिये
लूप है उनके लिए वरदान
जनसंख्या चाहे घटी हो
चरित्रहीनता बढ़ गई है
सैकड़ों सलमाएँ सीताएँ नंगी हो गई हैं
द्रौपदी स्वयं आज
खोल रही है अपना चीर !!

शिक्षक दिवस पर

बजरंगलाल विकल

नवयुग के ऋषि को
अन्याय, शोषण के
फाँसी के फन्दे पर लटका कर
आज हम कर रहे हैं,
अपनी वन्दना
अपनी सम्माननीय परम्परा को
अक्षुण्ण रखने के लिए
'गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु
गुरु देव महेश्वर
गुरु साक्षात् पर ब्रह्म
तस्मै श्री गुरुवे नमः,
हमारी श्रद्धा और भक्ति के
पुण्य गान मृत्यु की
समाधि पर गाये जाते हैं
जीवित रहते भुलाये जाते हैं
स्मारक और मूर्तियाँ
इसीलिए तो बनाये जाते हैं
जो रक्त की बूँद बूँद चुका कर
अस्थि मज्जा को खपा कर
दधीचि के समान
देवत्व की रक्षा के लिए
दे रहा है अपने अस्तित्व का दान
उसे पुरस्कार नहीं
इन्द्र का वज्र संकल्प चाहिए
विषमता के वृत्रासुर को
विध्वंस करने के लिए

ताकि समता के आर्य भाव की
प्रतिष्ठा अबाधित रहे
प्रज्ञामयी आत्मा स्वजागित रहे
और ज्ञान का सूर्य प्रकाशित रहे

स्वीकृति

थप थपाओ मत हमारी हर चुभन को
उकसने दो, उभरने दो
न जाने कौन-सा आँसू
छलक मुमताज महल बने
न जाने कौन दिल टूटे
चमक चिनगारियाँ फूटें
बगावत को लिखें खत
आदमी की वज्र मुट्ठी जब
भोगने दो आज को
संत्रास, पीड़ा, प्यास
कल जो अजन्मा है
प्रसव की पीड़ा सहे वह मुस्कराकर
मत सहारा दो उसे बैसाखियों का
मत चलाओ मार्ग पर अँगुली
पकड़ कर
स्वयं चलने दो, बदलने दो
उसे अपनी अजूबा आदतों को
हार स्वीकारो न स्वीकारो मगर
निस्तेज होकर खाक में मिलना
स्वयं को ही मिटा देना है

वसन्त की भोर

यह वसन्त की भोर
चन्दनी गन्ध नहाई
गुच्छ-गुच्छ फूलों से लदकर

निकली है ऋतुओं की रानी
दुलहिन जैसी
लालिम गोल-कपोल
कसी किशमिशी कंचुकी
गठे हुए गोरे अंगो पर
छाप लगी केसर कुंकुम की
नये बौर की तरह
अछूता यौवन इसका
आया है पूरे उभार पर
नई कोपलों मधु मुकुलों में
दिपता छिपता
फैला है अमराई की टहनी टहनी में
पीली माटी पर फूल बूँटों की
रांगोली
सजा गई है हवा महावर रचे हाथ से
छवियों के उड़ रहे
रेशमी रंगबिरंगे चीर चहुँ दिशि
किरण पालकी में बैठी है
नव परिणीता राजकुमारी
कंचन वर्णी भोर वसन्ती
जैसे खड़ा हुआ हो सज कर
रूप सुहाग रात के पहले ।

मैं अध्यापक नहीं हूँ

सोहनलाल गांगिया

मैं गत बीस वर्षों से
पढ़ाता जा रहा हूँ,
छात्र पढ़ रहे हैं—
काफी पढ़ गये हैं
और आगे बढ़ गये हैं।
बढ़ते जा रहे हैं
आदर पा लिया है
आदर देते हैं
मिलने पर,
चरण छूते हैं
प्रणाम करते हैं
कहते हैं—
"आगे बढ़ा हूँ
आपके आशीर्वाद से,
मुझे कोई सेवा का अवसर दो।"
बस।
पुनः देता हूँ आशीर्वाद—
जो मेरे पास है।
अध्यापक का फर्ज निभा कर भी
अध्यापक नहीं हूँ
क्योंकि—
डायरी नहीं भरता
पाठ बिन्दु नहीं लिखता
विशिष्ट उद्देश्य अंकित नहीं करता
अध्यापन प्रणाली
व छात्र-अध्यापक क्रियाओं को

खाना पूरी नहीं करता।
पाठन की सहायक सामग्री
सामने रहती है,
किन्तु !
डायरी में लिखने में
सदैव चूक करता हूँ,
गृह कार्य रोज देकर
चैक कर भी--
कागजों पर रिकार्ड नहीं रखता,
मूल्यांकन वर्ष में कई बार होता है
किन्तु !
योजना बनाकर डायरी में
प्रदर्शित नहीं करता।
मन में समझता हूँ
इकाई योजना, पाठ्य विभाजन
अध्यापन प्रणालियों से
खूब परिचित हूँ
बीस वर्षों में यही तो सीखा है !
किन्तु
कागज पर न लिखकर
मन के पट्ट पर सदैव लिखता हूँ
इसीलिए
निरीक्षक महोदय के लिये
मैं अध्यापक नहीं हूँ।
मेरा साथी
सब कुछ लिखता ही लिखता है
सब खाना पूरी करता है
अध्यापन के उद्देश्य,
पाठ्य बिन्दु
अविभक्त इकाई योजना
सभी से पूर्ण अनभिज्ञ है
किन्तु !

किताब से नकल कर
कागजों का
पेटा अवश्य भर देता है।
इसी तरह
आन्तरिक मूल्यांकन के सभी प्रपत्र,
परीक्षा प्रश्न पत्र के उद्देश्य मान,
विषयवस्तु मान,
प्रश्नों के प्रकारों का मान
ब्लू प्रिंट सहित
टेबुल पर बैठ कर
योजनानुसार
पूरे जाली भर देता है।
निरीक्षक के सामने कुछ नहीं बोलता
सब कुछ लिखा लिखाया
सामने धर देता है
पूरा 'मांडनेकार' है
जैसा कहा जाता है
वैसा 'मांडकर' तैयार कर देता है।
सर्वश्रेष्ठ अध्यापक की,
राष्ट्रपति पुरस्कार के लिये
निरीक्षक जी ने पूरी सिफारिश की
नाम आगे पहुँच गया है
प्रमाण पत्र छप गया है
उसका नाम भी उस पर
मंड गया है
क्योंकि—
वह मांडनेकार है।

बसन्त

ओमप्रकाश भाटी

पलाश के वन में आग लगा गया वसन्त
सारे आसमान को सुलगा गया वसन्त
यादों के गुलाब से
सांस - साँस महकी
रूप की धूप से
मौसम की देह दहकी
संयम की दीवार को ढहा गया वसन्त
पलाश के वन में आग लगा गया वसन्त
अधरों पर उभरे
अबोले बोल प्यास के
धड़कनों में गूंजे
गीत मधुमास के
दर्पण की नजर को उलझा गया वसन्त
पलाश के वन में आग लगा गया वसन्त
दर्द की दुल्हन खड़ी
महावर रचाये पांव मे
पीड़ा का सूरज ढला
आंसुओं के गांव में
मन में एक ज्वार सा जगा गया वसन्त
पलाश के वन में आग लगा गया वसन्त

अपने ही मन से

बन्धु !
अपने ही मन से
फिर फिर छला गया हूँ
सुधियों के व्यूह में
अभिमन्यु सा
फसता चला गया हूँ

मुट्ठी भर शब्दों को
हवा में उछालता रहा
गीतों के अक्षरों को
व्यर्थ में ढालता रहा
भीड़ भरे मंच पर
गीत गाते-गाते
अक्सर हकला गया हूँ

बन्धु !
अपने ही मन से
फिर फिर छला गया हूँ
धूल जमा दर्पण
तोड़ गया कोई
दर्द का बोझा यहाँ
छोड़ गया कोई

अरण्य वन में
कस्तूरी मृग सा
भटकता चला गया हूँ
बन्धु !
अपने ही मन से
फिर फिर छला गया हूँ

क्षणों की कतारें

अरनी राबर्ट्स

आज सुबह उठते ही
एक टुकड़ा धूप का,
मुझे निगल गया,
किचिन ने धुआँ भर दिया जेबों में
ड्राइंग रूम की खिड़कियों से,
ठिठुरते क्षण अंदर चले आये।

बहुत सी रेत है,
और अभी एक केक्टस ने जन्म लिया
किसी अनुभूति का बोझ
मेरा अस्तित्व सह नहीं पाता है
कैसे हैं यह क्षण ?
पता नहीं असगतता क्यों चुभती है ?
समझौते की क्षमता
केले के छिलके पर फिसलती
चली गई।

असंतृप्त स्थितियाँ— कगारों पर खड़ी हैं
समय बदल गया है,
अब किसी ने बैसाखियाँ छीन ली हैं,
दराज से निकाल के
एक खुशी जो मुझे दी गई थी,
अँधेरे में बैठे एक गिद्ध ने छीन ली
पर क्या....!
माँस की बोटियाँ भी तो कहती हैं,
और किसी 'इज्म' के अन्तर्गत
एक कहानी बनती है नई।

बिजली के तारों सा नंगापन,
छू जाता है हर मनः स्थिति को
बहुत से पर्दों को उठाना होगा,
तभी एक सूरज निकलेगा
एक कटोरी दूध है,

कई साँप हैं – बबूल के पेड़ के पीछे
एक उदास पीले चाँद को
मनः स्थिति कोई नहीं देखता
आज लगता है क्षणों को मुट्ठी में,
किसी ने कसके दबोच लिया है
स्थूलकाय रात रोती है,
दबे दबे स्वरों में

धूप के पखेरू

विश्वेश्वर शर्मा

आँगन में आ बैठे
धूप के पखेरू

सारी आवाजें
चिचियाई-सी
रोशनी नहाई-सी

पिघल-पिघल गये कई
आप ही सुमेरू

स्वप्न की सुराही में
स्वर्ण रग वारुणी
रास करे लीला विस्तारिणी

रत्न-रत्न फेंक गया
कौन धन विखेरू ?

○

माटी की गंध

फैली रे,
माटी की गंध ।

एक एक रंध्र पी रहा है ।
क्षण क्षण आयुष्य जी रहा है ।

मैली रे ।
माटी की सुध ।

सांस रपा समय सतत् ।
प्यासा यह सत्-संवत् ।

खेलो रे ।
वर्षा निर्बन्ध

एक ही प्रतीक्षा

कोसों तक फैली है
एक ही प्रतीक्षा
मौन के नियन्त्रण में
भीड़ भरी राहें
बाँध गया दृष्टि कौन
कील गया बाहें
रोज रोज सीता की
एक ही परीक्षा
हर कोई लादे है
अनुभव की गठरी
आम यह शिकायत है
मेले में बिखरी
बहुत से पुराणों की
एक ही समीक्षा
स्मृतियों के गर्भ में
सुख की परिकल्पना
समय ने सजाई है
सतरंगी अल्पना
बार बार जीवन की
एक ही निरीक्षा

यह बात अलग है

वैसे क्या चाहता था ?
यह बात अलग है
मिल गया उसी की बात करता हूँ
कुछ आवाजें मिल गयीं
कुछ नारे मिल गये
और मिल गई कुछ समस्याएँ
समाधान चाहता था
यह बात अलग है

इन लोगों से मेरा कोई वास्ता नहीं
फिर भी ये लोग मेरे हैं
और इन्होंने कुछ दिया ही है
चाहे वह भय ही क्यों न हो

इन से क्या माँगता था ?
यह बात अलग है

यों बहुत कुछ है
जो
कुछ नहीं होने से बेहतर है
और उसकी उपयोगिता से
मुझे इनकार नहीं

लेकिन क्या विचारता था
यह बात अलग है

मानता तो हूँ, जी रहा हूँ
चाहे जहर ही सही
लेकिन पी रहा हूँ
आखिर कुछ खाता ही हूँ
चाहे धोखा हो, ठोकर हो

मुझे क्या कुछ भाता था
यह बात अलग है

वैसे सब कुछ अलग है
मैं और मेरापन
तुम और तुम्हारापन
यह दुनिया और दुनियापन
और पने का मैं अभ्यस्त भी हूँ।

फिर क्या सुहाता था ?
यह बात अलग है

दोपहरी

अर्जुन 'अरविंद'

लेट गयी
दोपहरी
आँगन मुँडेरे

कमरे में फूट पड़ा कैसा यह ज्वाल ?
अलसायी आँखों ने कर दी हड़ताल
क्रूर हुआ भावों का बढ़ता उबाल
उमसाया अंग अंग, उभरे सवाल

फूट रहे
टहनी के
धूप भरे घेरे

छायाएं कैद हुईं संध्या की जेल में
लपटों ने बाजी ली जीवन के खेल में
ऊंघ रहे वृक्षों के डंठल बन प्रहरी-
किरणों के घुसपैठी पहुंचे खपरैल में

अंबर ने
तान दिये
धरती पर डेरे

गिरवी है सूरज के, अधरों की प्यास
लौट गयी मंडराती बदरी उदास
बाहर और भीतर भी बिखरा अलगाव-
प्राणों में उठती है धीमी निश्वास

आशा के
टूट गये
जंगल घनेरे

मरने की खुशी में

मणि बावरा

यह जो मैं हूँ
मैं नहीं हूँ
महज़ होने का स्वांग
विश्वास के मुखौटे में।
भेड़िए के जबड़े
और मुर्गे की बाग
मैं मजबूर किया गया
कि ऐसा करता।
आखिर कब तक
दुर्दिनों की शराब पीकर
सूने अँधियारे गलियारों में
भटकता फिरता।
खाने को खाना समझकर
पुट्ठे या रेत चबाया करता।
जीवन भर जिन्दगी के चक्रव्यूह से
जूझता रहा
और""हर बार हर हरा कर टूटता रहा।
तमाम इन्सानी रस्म-रिवाजों के बावजूद भी
जब
दो वक्त रोटी
ताजा धूप का कोई टुकड़ा
हथेली भर हवा ताजी
मुट्ठी भर आसमान
और तो और
होठों भर मुस्कान
भी न मिली
तो एक दिन मैंने
अपनी आत्मा को गोली मार दी।

और""लाश
देश के उन हिटलरी हाथों में सौंप दी
जिन्हें इसकी वेकरारी से प्रतीक्षा थी।
सचमुच उस दिन मैं मर गया
और मरने की वेहद खुशी में
एक जोरदार ठहाका लगा गया।

आदमी ऐसा नहीं हो सकता !

दिन भर
एक मूर्तिकार की तरह
तुम !
मेरी प्रतिमाएँ गढ़ा करती हो
वैसे तुम कायर हो
भीड़ से भागती हो
पर स्याह रात के सन्नाटे में
जब भी मैं अकेला होता हूँ
जाने कहाँ से
अट्टहास करती हुई आ जाती हो
और इङ्गित करती हो
मेरी उन प्रतिमाओं की तरफ
उफ़ !
कितनी विकृत, वीभत्स और नृशंस लगती हैं
मैं चीख उठता हूँ
तुम झूठ बोलती हो
अनर्गल बकवास करती हो
ये मेरी प्रतिमाएँ नहीं हैं
इनमें मैं नहीं हूँ
मुझे कचोटो मत
लीलो मत
मैं आदमी हूँ
और ''आदमी ऐसा नहीं हो सकता !

आँखों का प्रश्न

ठहरो !
मुझे भी साथ चलना है
वहाँ उस आँगन में
जहाँ शरद पूर्णिमा है
श्री है… समृद्धि है…स्निग्ध चांदनी है
शान्ति की अणिमा है
उस हिंसक पशु से
जो अपनी बेजा हरकतों से
हरदम रचता रहता है
काली कुटिल कृतियाँ
ओछी और संकुचित मनोवृत्तियाँ
एक दहलाने वाली आतंक भरी दुनिया
जब वह चरम सीमा पर होता है
क्या कर सकता हूँ
बेबस होकर हार जाता हूँ
और…फौरन अपना चेहरा बदल देता हूँ
और केवल अपराधों के अतिरिक्त
कुछ नहीं कर सकता हूँ
कुछ भी तो नहीं कर सकता हूँ
मैंने बार-बार चाहा है
बारम्बार चाहा है
और हर बार अहर्निश संकल्प किये हैं
कि कल इस भयानक भंवर से
मुक्त हो जाऊँगा
सत्य कह जाऊँगा
और
गति…प्रगति
उजाला…मुकाम की ओर दौड़ जाऊँगा
पर हर बार

सुबह में शाम हो जाती है
और⋯शाम में सुबह !
संकल्प की धज्जियाँ
विषभरी हवाओं में
जाने कहाँ खो जाती हैं
भाग्य और भविष्य
धरम और करम
भी चुप्पियाँ साधे हैं
मुझे नहीं मालूम
देव के भी कौन से
कानून और कायदे
इसके पहले कि
मेरी चीख ज्वालामुखी बन जाय
मैं फिर-फिर आवाज लगाता हूँ
कि ठहरो
कि अभी भी
लगातार २५ वर्षों से
टूटती हुई प्रतिज्ञाएँ पूरी करना है
जन्म की सार्थकता की गवाही
इस देश को देना है
मुझे भी चलना है
वहाँ, उस आँगन में
जहाँ शरद पूर्णिमा है !!

रेजगारियों का विद्रोह

गोपालकृष्ण लाटा

एक रोज
सभी रेजगारियाँ
इकन्नी,
दुअन्नी,
चवन्नी,
और अठन्नी ने
मिलकर
आवाज दी।
(जैसे कि कोई स्ट्राइक वैलट, ताजा ताजा ही निकला हो)
शिकायत की लरज में,
बड़ी ही गरज में,
चवन्नी
चीखने लगी
"कभी चलती थी,
मेरी पावली पाँच आने में"
आज अफसोस है
कि भिखारी भी
पूछता नहीं।
क्यो न सामूहिक स्वर में
धौंसे की आवाज में
क्यों न कानों के जकड़े पर्दे
हिला दें
बड़े से बड़े लाट के।
ये भी
क्या सिक्के है ?
जिनका सिक्का चलता नहीं है !

न बोझ
न दाब
न आवाज
न कोई ख न न न
न कोई ट न न न
ज्यों ही पड़ी
आवाज निकली
(आवाज निकली)
ठ स
सभी रेजगारियाँ चिल्ला पड़ीं
आवाज निकली
वही ठस, ठस
मुझे लगा या सुना
टांय टांय फिस
रेजगारियाँ चुप हो गयीं
पर ठप्पा न पड़ा।

नवीन परिवेश

भँवरसिंह

गाँधी के तीन बंदर
बड़े क्रियाशील हैं
नवीन परिवेश में
हमारे अन्दर।
द्रौपदी—
न्यायाचार की,
भ्रष्टाचारी दुःशासन के हाथों
नग्न होती देख,
सहज भाव से
आँख पर हाथ लगा कर
प्रस्थान कर जाते हैं
(क्योंकि बुरा देखना बुरा बताते हैं)
'नरो वा कुंजरो वा' की तरह
अपने–बाँधवों की
समालोचना
कर्ण–प्रदेश न पहुँचे
कर द्वय कर्ण दबाए
ठाठ से ठहाका लगाते हैं
(क्योंकि बुरा सुनना बुरा बताते हैं)
'क' ने 'ख' के
खुले आम खंजर घोंपा।
प्रत्यक्षदर्शी अन्तर से बूझा।
निर्लेप चुप्पी।
लगा–श्री ख कटा या खरबूजा।

× ×

इस कवायद में रत

जयन्ती : रजत की

गौरीशंकर आर्य

इतने दिन बीत गये,
कसमों के बोझ को अब मत उठाइये,
"...हम पहले देश"— कहना था, कह लिया,
रुटीन था, अब सब भूल जाइये।

*

आप अध्यापक हैं—कक्षा में जाइये,
कुछ मत पढ़ाइये, केवल बहकाइये।
ट्यूशन कमाइये—परीक्षा में दिखवाइये
या फिर 'जीरो' के दम ही बनवाइये,
मम्मी और डेडी तो रिजल्ट देखते हैं—बस,
उनके हृदय से भ्रम कभी मत मिटाइये
रजत की जयन्ती अब जी भर मनाइये।

*

आफिस में जाना है—मस्ती से जाइये,
काम मत करिये कुछ—कागज फैलाइये।
"आराम हराम है" - तख्ती पर टाँगिये,
सिगरेटें फूँकिये—तम्बाकू थूकिये
फाइल के पेपर पर समोसे खाइये।
सीधे मुँह किसी से वहाँ कभी बात करना नहीं,
काम बहुत होता है, घर पर ले आइये,
बड़े बड़े मुर्गों को घर पर बुलवाइये,
पास में बिठाइये चाय कुछ चुगाइये,
बस अब फँसाइये—और फिर पकाइये,
पूरा का पूरा खुद ? जी हाँ डकार जाइये।
अगर कहीं गलती हो अकेले चटकर जाना
बुजर्गों की सीख है—बाँट बाँट खाइये
यह भी एक ढग है—समाजवाद लाइये।

*

फूल कास सकल महि छाई

श्यामल तन-सी, निर्मल मन-सी,
मटमैली, फैली अबोध-सी
मृदु भूमि के ऊपर उर पर—
(जिसे उर्वरा होने में कुछ वर्ष शेष हैं)
कास घास को उगा देखकर बालक बोला—
वह देखो तालाब भरा है।
बाबा बोले-भोले बच्चे
वह सफेद जो दीख रहा है—"कास घास है"
"कास घास क्या ? कब उगता है, क्यों उगता है ?
और कास यह क्या करता है ?"
बाबा बोले —"प्यारे बेटे-कास, घास है लम्बी मोटी,
जिसके सिर पर उग आई है
वह सफेद सी मोहक चोटी।
इसका उगना बतलाता है—
जनजीवन की प्राण सुहानी वर्षा ऋतु का अन्त आ गया
ऐसा लगता है न देखो,
जैसे कोमल हरी हरी कोंपलों पर यों असमय
बिना बुलाये हुए बुढ़ापा यत्र तत्र सर्वत्र छा गया।"
"और कास यह क्या करता है ?"
"बस इसकी कूँची बनती है
चतुर पोतने वाले इसको जोड़ तोड़ कर
पहले से निर्मित भवनों पर
लीपा पोती कर देते हैं।
पश्चिम में जब उन्हें देखते भुवन भास्कर
क्षणिक लालिमा से उनकी तब खाली झोली भर देते हैं।"
चौंका बालक—
वृद्ध कास को देख,
और फिर अपनी प्यासी मुर्झाई सी
खड़ी फसल पर एक आर्द्र विश्वास फेंक
कुछ सोच रहा है,
शेष आवरण-सी पगड़ी की,
एक फटी चिन्दी से अपनी
दोनों आँखें पोंछ रहा है।

पर दोस्तों !
गल्ती हमारी है
क्योंकि हमने अपने पेंट में सैकड़ों सूराख बना लिए हैं
और उन सुराखों से हमारी अतृप्त इच्छाएं
दिन रात जीप लपलपाती हैं
और हम गलत दिशा में अपना रथ मोड़ देते है
फिर हर घण्टे, हर मिनट और हर क्षण
कई-कई आवाजें जनमती हैं एक साथ
और कीड़ों की तरह कुलबुलाती हैं
शोर इतना तेज होता है
कि पूरा का पूरा माहौल काट खाने को दौड़ता है
और हम आवाजों के जंगल में खो जाते हैं

युद्ध

नारायण कृष्ण पालीवाल

यह लड़ाई क्यों होती है
क्यों इन्सान हैवान बन कर
आदमी का लहू पीने लगता है
एक बार अपनी कलम से
यही पूछना चाहता हूँ मैं
क्यों आदम का बेटा
आदिम ही रहना चाहता है
अगर इन्सानियत हमारी पूँजी है
तो क्यों नहीं हम
अपने नकाबी चेहरों पर
तेजाब छिड़के
क्यों नहीं पत्थरों से
'ताज' तराशें
क्यों नहीं बांसुरी की
टेर सुनाएँ
क्योंकि ये पहर

एक बार फिर उठ
अपने पौरूष को जगा
निखार दे टूटे सपनों का रूप
एक बार फिर दहाड़ कि धरती हिल उठे
सागर की लहरों में ऊफान आए
हिल उठे पर्वतमालाएँ हिमालय से कन्याकुमारी तक ।

सै : कफन

अपने हाथ की रेखाएँ
पढ़ते पढ़ते
बूढ़ा हो गया हूं मैं
मैं और मेरा अहम्
अविभक्त नहीं हैं
मगर जब मैं अहम् को
अकेला छोड़ अपनी ही
परछाई देखता हूं
मुझे महसूस होता है
कि मैं बौना हो गया हूं
मेरी पीढ़ी मुझे चौराहे पर
शायद इसलिये दुत्कारे
कि मैं किसी से कोई समझौता
नही कर सका
टूट टूट कर जिया
और मरते दम भी
अपने लिये कोई कफन
नही छोड़ सका
किसी के अरमानों की लाश
के लिये खुद कफन बन गया ।

कुछ लोगों के दिल
रेगिस्तान से होते हैं
जहाँ फूल तो क्या दूब भी नहीं मिलती
ये लोग मरने के बाद
अपनी पूँजी की रखवाली के लिये
साँप बनते हैं
कुछ अपनी मस्ती में जीते हैं
उन्हें पीने को चाहिये
चाहे घर के बच्चे भूखे मरें
कुछ दुम हिलाने में ही
अपना गौरव समझते हैं
कुछ मेरे जैसे भी है जो रोते हैं दूसरों के रुदन में
दुनियाँ हमें पागल कहती है
मैं अकेला हूं

०

एडजस्टमेन्ट

श्रीमती वीणा गुप्ता

थर्ड क्लास के डिब्बे में
इन्सान के ऊपर इन्सान
इतना ही नहीं
जानदार के ऊपर बेजान
सामान ।
जगह की कमी
टिकटें अधिक
सीटें कम
या यात्री अधिकतम
बिना टिकिट करते सफर
सुबह से हो जाती सहर
लड़ते
झगड़ते
एक दूसरे पर झपटते
रौब गांठते
फिर भी
एडजस्ट करना पड़ता है
क्योंकि
यह सफर है
और सफर तो करना ही है ।
जीवन भी एक सफर है
ट्रेन के सफर की तरह
जहाँ
वे लोग दुखी रहते हैं
जो नहीं कर पाते एडजस्ट

ग्रौर वे सुखी रहते हैं
जो कर लेते हैं एडजस्ट ।
ट्रेन के सफर में भी
जीवन के सफर में भी ।

तलाश

हर मोड़ पर
सफर में
जिन्दगी के
ग्राजकल
करवट बदल लेती है
जिन्दगी ।
नई दिशा उठा लेती है
शरीर का बोझा
दो कदमों के सहारे
ग्रौर
हम पाते हैं
अपने ग्रापको ऐसी जगह
जहाँ से
नजर भी नहीं आते किनारे ।
तब बहुत दूर निकल जाते हैं
किनारे की तलाश में ।
पर
कुछ नहीं ग्राता हाथ में ।
क्योंकि—
मन्जिल हमारी जिन्दगी की
ग्रनजान है ।
किनारों से न अपनी जरा भी
पहचान है ।

सफेद चादर के नीचे

दूर कहं
कोहरे की चादर ओढ़े
पेड़ पौधे
पर्वत शृंखलाये
धुंधलाये से शरीर
कितने सुन्दर लगते हैं
मन को भाते हैं
सुबह ही
निकल जाते हैं
सैर करने को
तब हम
नहीं देख पाते
कंटीले झाड
ऊबड़ खाबड़ टीले
मानवता के नाम की कालख
क्योंकि—
ये सब आँखो से दूर है
और इन सबका
छिपा होता है रूप
कोहरे की सफेद चादर के नीचे

मत्स्य तंत्र के विरुद्ध ?

मनमोहन झा

हकीकत तो यह है....ओ मेरे चर्बीदार चीकने भाई !
कि तुम
अपने सिवा किसी खुदा को खुदा
और आदमी को आदमी नहीं समझते
वरना मैं तुम्हें सलाह देता
कि तुम
खुदा को उसकी रहमदिली और भोलेपन के लिए ...और
आदमी को उसकी नम्रदिली और बदबूपन के लिए
धन्यवाद दो
धन्यवाद दो इस सड़ियल व्यवस्था को
कि तुम बाकायदा जिन्दा हो
अपनी तमाम अहमक हरकतों के बावजूद
और बावजूद
अपने दम्भ....अपनी वासना
अपने अविश्वास....अपनी अनास्था के
मटरगश्तियों के साथ
वरना
जब एक औसत आदमी
रोशनी में खड़ा होकर अपनी मुट्ठियाँ कस लेता है
तो सारी हवाएँ उनमें कैद हो जाती हैं और
सारा माहौल पालतू पिल्ले-सा दुमियाने लगता है
लेकिन हकीकत तो यह है मेरे बन्धु !
हवाएँ इन दिनों सिर्फ तुम्हारे लिए बह रही हैं
और डरपोक सूरज इन दिनों
तुम्हारे आदेशों से जलता और बुझता है

सुबह होने से पहले तुम्हारे दरवाजे पर आकर
एक चापलूस सलाम ठोकना....और
दिन ढलने के बाद तक हड्डीतोड़ दौड़ धूप करना
मुझे सूरज की इस कायरता पर
अनायास ही अधिनायक एलेक्जेन्डर से आतंकित
एरिस्टोटल का उदास चेहरा याद आ जाता है
फिलहाल
यह दूसरा प्रश्न है कि
एलेक्जेन्डर किस कुत्ते की मौत मरा था ?
और क्यों उदास एरिस्टोट्ल आज भी अंधी गलियों में
गर्दन लटकाए भटकता नजर आ सकता है ?
फिलहाल
एक मानवीय तत्र में
तुम्हारी और तुम जैसों की वही जगह होनी थी
जो जूतों की होती है
एक पारम्परिक भारतीय घर में
लेकिन हकीकत तो यह है मेरे बड़े भाई !
कि इस दास प्रथा ने तुम्हें चिकना चमकदार
शिरस्त्राण बना दिया है
तुम
लाल हरफों वाली नीली किताब पर
काली बन्दूक जमाकर सफेद खरगोश-से निरीह
किसी भी आदमी को खुले आम हत्या कर सकते हो
हत्या (?) नहीं........शिकार !
तुम्हारे कृतज्ञ कवि (?) न्यायाधीश (?) अखबारनवीस (?)
और व्यावसायिक प्रचारक
तुम्हारे निशाने की प्रशस्तियाँ प्रकाशते हैं
एक मगरमच्छ की मानिन्द तुम आजाद और समर्थ हो
इस जलाशय में
तुम्हारे दबदबे की दहशत से दबा आम आदमी
हकीकत में हरगिज ही आदमी नहीं है
वह तो महज एक मछली है

मछली : जिसे कोई भी बड़ी मछली
कभी भी निगल सकती है
इस जलाशय में
तुम्हारा राज है

क्योंकि
जल में रहना मछली की विवशता है
दहशत में जीना जलाशय की सहजता है
ऐसे में—
कवि और कविता
मेढ़क और उसकी टरटराहट से अधिक
और क्या हो सकती है ?
पिछले कई वर्षों से यह सवाल मुझे सालता आ रहा है
कि मरे साँप जैसी चीज
जिसे तुम
नैतिकता/आदर्श/संस्कृति/समाज/जनतंत्र
जैसा मीठा नाम देते आ रहे हो
क्या यह एक जलाशय है ?
क्या आम आदमी
महज एक मछली है ??
क्या जलाशय ही हमारी नियति है ???
खौफनाक दलदलीय तटों से घिरा
शान्त सतह के भीतर दहकता
विवश जलाशय !

○

श्रेणी भेद

भगवतीलाल जोशी

'काल'
अवर्गीकृत शब्द नहीं
क्योंकि 'अकारन' है,
उसी तरह
'इन्सान' शब्द भी बेहाल है,
अर्थात्
जिसका नहीं काल है
उसी के लिए यह 'अकाल' है
और
जिसके लिए अकाल है
वही निहाल है,
(फिर कहते हैं कुछेक कि वो मर रहे हैं,
किन्तु हम देखें क्यों उधर ? जबकि हमारे
पास दया नहीं है)
फेमिन, परमिट, शक्कर-नाज का कोटा
ही कर देगा माला-माल
इस साल
चाहे काल हो या अकाल
और जो दिन में नहीं जीत सकेगा बाजी
वह जीत लेगा फायलों में
या पुलिस के आगे-पीछे होकर
रात में
बात ही बात में
मार देगा किसी न किसी को
मुलाखात में,
खैर, ऐसे किस्से खूब हुए

होते रहेंगे
जनतंत्र का पाठ अध्यापक पढ़ा रहे
पढ़ाते रहेंगे............
मगर............
असमानताओं के समान
बहकती क्यों है चाल
इस साल
बराबर हैं काल.......अकाल........

काँच की गाड़ी

प्रेमचन्द कुलीन

जिन्दगी है काँच की गाड़ी
जो समय की सड़क पर दौड़ रही है।
मन में लगी लिप्साओं की–
वेशुमार सवारियो को छिपा कर,
ढो रही है।
मन मेरा,
(जो कि ट्रैफिक इन्सपेक्टर हैं)
महसूस भी करता है।
पर न जाने कौन से भय से,
चालान नहीं करता है।
शायद सोचता होगा,
छिपी हैं सवारियां,
कौन देखता होगा।
जब कि गाड़ी है काँच की–
आर पार हर कोई देख लेता है।
क्रूर हँसी हँस कर जी मसोस लेता है
और……… ….
सवारियों के वोझ से विना मंजिल पाये ही–
गाड़ी का धुरा टूटता है
फिर मन मेरा
गाड़ी के मलवे को–
वुढ़ापे के अँधेरे में
घसीटता है।

⊙

जन मन को कंचन कर लूँ

मासूम चेहरों पर छाया है अँधेरा,
मौसम से पहिले बुढ़ापे ने घेरा।
आनन्द पराजित मातम से हुआ है कि—
जन्म से पहिले मृत्यु का बसेरा।

अँधेरा हरूँ तो ऐसे हरूँ।
दीपक बनूँ हर घड़ी में जलूँ।

पीढ़ी दर पीढ़ी से देखा यही है,
लज्जा के वसन पर पैबन्द दिया है।
जीवन बेबसी मे मजबूर हुआ है कि
जनम से पहिले गरल पी लिया है।

जीवन बनूँ तो ऐसा बनूँ।
गरल पी इसे भी अमर मैं करूँ।

आना व जाना युगों से रहा है,
धरा की तपन से झुलसता रहा है।
बालुई इरादो में ऐसा पका कि—
वायु का झोंका लिए जा रहा है।

कण बदलूँ तो ऐसे बदलूँ।
जन मन को कंचन करलूँ।

ओढ़ी है चादर पुरानी नहीं है,
बदला है रूप जवानी नहीं है।
लड़खड़ाते कदम बढ़ जाएँ ऐसे कि—
मंजिल बड़ी है, दूरी नहीं है।

रूप सजूँ तो ऐसे सजूँ।
विश्व कर्मा की कला में छजूँ।

बना दे जहाँ

धन्यवाद तुझको ।
भारत की धरती पर गोदाम भरे पड़े हैं ।
भूल गये वे, जो अभावों से लड़े हैं ।
मैं क्यों भूल करूँ ?
सोता है वह खोता है ।
इस जमाने में—
सच और ईमान रोता है ।
अच्छा !
समझ गया मैं—
आपको भी कुछ चाहिए ।
भिजवाता हूँ मक्खन की टिकिया,
लेकिन अब तो बनाइए !
[क्या ?
चूहा !!]

⊙

जब सूरज उगता है—
तब—
तुम बोलते हो।

अनुभूति

मेरे बाल बहुत काले हैं,
बहुत लोग—
मुझको—
बच्चा कहने वाले हैं।
मतलब यह कि मुझे—
अभी बहुत जीना है।
अपनी ही चादर के—
पैवंदों को सीना है।
मित्र जो बना—
इन कंधों पर चढ़ गया,
भीड़ में अनायास—
बहुत बड़ा बन गया।
वजन किसी का था,
कंधा किसी का टूट गया,
शिकायत जिससे की—
दाँत दिखा रूठ गया।
आँखे जिसे दिखाऊँ,
देखते ही फोड़ देगा।
समझाने बैठूँ तो—
हाथ-पाँव तोड़ देगा।
सहते सहते, सीना—
छलनी बन चुका है,
उपदेश सुन—सुन कर,
मेरा मन भर चुका है।
जहर ! बहुत पी चुका,
अब, अधिक नहीं पीऊँगा,
दुनियाँ बड़े, इसलिये—
पसीना नहीं दूँगा।

महादेव नहीं हूं, आदमी का बच्चा हूं,
इसलिये जब आदमीयत—
अल्पमत में रह गई है—
अक्ल से काम लूंगा।
जीवन के शेष दिन—
गधों में गुजारूंगा।
उन्हीं से दोस्ती कर,
उनको पुचकारूंगा।
अपना भी भार—
कभी—
उन्हीं पर खिसका कर
चैन की सांस लूंगा।

हल हो गई है समस्या

बहुत एक हो गया है
भाषाई दृष्टि से—
मेरा देश।
उत्तर से दक्षिण
और
पूरब से पश्चिम तक
उसने अपना ली है—
पेट की भाषा।
एक साथ चिल्लाने लगा है वह
जोर से—
भूख, बेकारी, रोटी, रोजी !
कितनी विकसित—
सचमुच हो गई है—
भावात्मक एकता
और—
हल हो गई लगती है—
भाषाई समस्या।

और समिधा आत्मा फुँकती रही है

व्रजेश "चंचल"

निकट रहकर अब बहुत घबरा गया हूँ,
इसलिए, अब दूर जाना चाहता हूँ।

लो सँभालो, यश भरे ये पात्र अपने,
खनखना कुछ देर रीते हो गए हैं।
हर सलेटी रात के मुँह जोर सपने,
आँख भरकर साथ मेरे सो गए हैं।

स्वत्व माँगा था कभी जो प्यार का तो,
अचीन्हा, यह घृणा का संसार पाकर,
बिम्ब होकर काँच से चकरा गया हूँ,
इसलिए, अब बिखर जाना चाहता हूँ।

दान लेकर क्या करूँ, हूँ स्वयं दानी,
गिड़गिड़ाना है नहीं विश्वास मेरा !
शब्द की जिस तूलिका से चित्र खींचे,
विविध वर्णी इन्द्रधनु सा जो चितेरा!

क्या नहीं हूँ मैं कि होकर तत्व ज्ञानी।
मृत्यु से वरदान पाकर अमरता का,
आहटों तक से कि अब कतरा रहा हूँ,
इसलिए, अब चूर होना चाहता हूँ।

धूप थी, जब रूप का सूरज तरुण था,
अस्त क्षण के बाद भी थी तपन इतनी।
सुरा पीकर रात सोये शराबी की,
आँख में हो शायरी की चुभन जितनी।

दर्द का यह यज्ञ जब से चल रहा है,
और समिधा आत्मा फुँकती रही है—
आग होकर राख सा छितरा गया हूँ,
इसलिए बन धूल उड़ना चाहता हूँ।

निकट रहकर अब बहुत घबरा गया हूँ,
इसलिए : अब दूर जाना चाहता हूँ।

सपनों के कफन

रामेश्वर दयाल श्रीमाली

आज भी सतयुग है
अटल है मनुष्य
युग-सत्य के निर्वाह में ।
हर युग का शाश्वत सत्य
भूख है, रोटी है—
पेट की भट्टी में अनवरत, अकम्प
चिरन्तन
दहकते शोले !
हित चिन्तक ऋषि का बाना पहिने
छल का विश्वामित्र
आज भी सर्वस्व छीनने खड़ा है
मायावी मशीनें
आज भी सपने बुनने में व्यस्त हैं
आज भी
ऐश्वर्य-सुमन-सम्भव
छिपा सा
अभावों का काला नाग
प्रतिक्षण डसता है—
कला के रोहिताश्व को ।
किसी अश्वपति सेठ की
तोंद के तले
आज भी गिरवी है
प्रतिभा सम्मान की तारामती
विवश सी !
आज भी
बिका हुआ है
इन्सानियत का हरिश्चन्द्र

वेचता प्रतिपल
शव-सपनों के कफन ।
आज भी सतयुग है
अटल है मनुष्य
युग-सत्य के निर्वाह में

कूड़ादान है इतिहास

पड़ गये हैं काले
इन्सानियत के गुलाब
न आभा रही है
न सुगन्ध
सड़ते हैं, और बदबू देते हैं।
कूड़ादान है इतिहास
निसत्व छिलकों की सड़ी हुई बदबू से
बे-आब पत्थरों से
पाता जीवन-ध्वनि
दिखाता रस-बोध.......(?).........!
मत खोजो सभ्यता के पदचिह्न-
बडे भीषण हैं
सड़ चुकी संस्कृतियाँ
बाँटते दुर्गन्ध
समय के सरोवर में
मरी मछलियों सी ।

सन्त्रस्त का विद्रोह

बलवीरसिंह 'करुण'

तुम
मुझे सपनों का मायावी झुनझुना देकर
बहलाना चाहते हो।
तुम
मेरे अतीत और भविष्य के बीच से
मेरा वर्तमान हटाना चाहते हो।
तुम यही चाहते हो ना—
कि मैं भूख ही खाता रहूँ
और प्यास ही पीता रहूँ,
अभावों के अंगारों से जली
इस जीवन की गुदड़ी को
बिना धागे वाली
जंग लगी
और टूटी नोक वाली
आशा की मोटी सूई से सीता रहूँ।
तुम यही चाहते हो ना—
कि व्यवस्था के नाम पर
मैं घोर अव्यवस्थाजन्य अपमान को
चुपचाप सहता रहूँ;
तुम्हारी बदचलन इच्छाओं की
बदनाम कोख से जन्मी
अवैध सन्तानों जैसी कुरूप रूढ़ियों को
अपनी कुबड़ी पीठ पर ढोता रहूँ
और "नित्य-नित्य" कहता रहूँ
और तुम यही चाहते हो ना—
कि मैं गूँगा होने का स्वांग

जीवन भर भरे रहूँ;
अपनी आँखों पर पट्टी
और कानों में रुई
जीवन भर धरे रहूँ।
परन्तु ओ मेरे स्वयंभू—
तथाकथित संरक्षको !
सुनो—
मैंने अपनी आँखों पर से
तुम्हारी कसी हुई पट्टी खोल दी है,
मैंने अपने कानों से
तुम्हारी ठूँसी हुई रुई निकालकर फेंक दी है,
और मेरी जीभ
क्रान्ति का स्वागत-गीत उचारने लगी है,
मेरी शिराओं में
खौलता हुआ पिघला फौलाद बहने लगा है,
मेरा बौना कदम
चाँद के आँगन में—
चहलकदमी को मचलने लगा है।
ये लो, अपने सारहीन सपने,
सम्हालो ये दिवास्वप्नों की पिटारियाँ,
थामो ये पंक्चर हुए आशा के गुब्बारे।
मैं अपना भविष्य स्वयं गढ़ूँगा,
मैं अपना वर्तमान स्वय पढ़ूँगा,
मैं अपने बढ़ने की दिशा
अब स्वयं निश्चित करूँगा।
मैं अब अपनी योजनानुसार ही जीऊँगा,
और अपनी योजनानुसार ही मरूँगा।

गधा बनाम हाथी

नन्दकिशोर शर्मा 'स्नेही'

एक दिन की बात
शाम थी उदास,
मैं भी चला जा रहा था,
अँधेरी सड़क पर-
अपने मित्रों के साथ।
समीप ही सड़क के किनारे,
आलीशान भवन के सहारे,
एक कुत्ता
सुथरी नस्ल के अभिमान में,
रुतबा जमाने की फिराक में,
भौंक रहा था बार-बार—
बदली-बदली आवाज में।
मैंने नज़र उठाकर देखा,
तो अचरज था—
क्योंकि वहाँ एक गधा भी था,
जो आजादी के मूड में
हरी घास चूँट रहा था।
हमने सुना था—
'हाथी जब निकलते हैं तो
कुत्ते भौंकना अपना फर्ज समझते हैं,'
शायद
कुत्ते ने उसे हाथी ही समझा था,
अथवा हाथी
उस कुत्ते ने पहले कभी नहीं देखा था।
पर गधा भी लाजवाब था,

हाथी जैसी मन्दगति, बेफिक्री का भाव था।
उसने भी शायद
स्वयं को हाथी ही समझा था,
क्योंकि कुत्ता, उसे देखकर ही तो भौंका था ?
सच है, गधा यदि स्वयं को हाथी समझता है
तो क्या गुनाह करता है ?
वह तो जमाने के साथ चलता है !

सही स्तर

सुषमा चतुर्वेदी

तुमने अपनी नज़रें सदा,
धरती पर जमाये रखी हैं,
धरती—
जो देखने में ठोस लगती है,
पर उसके अन्तराल में क्या क्या छिपा है,
यह किसी को नहीं मालूम।
हाँ, कभी कोई ज्वालामुखी फूटता है,
और कभी कठोर दिखने वाली—
धरती का सींग चीर कर,
मीठे जल का (या यूँ कहूँ कि तृप्ति का)
कोई स्त्रोत फूट पड़ता है—
और कभी कभी इस धरती के मन में,
कोई भूचाल आता है—
भूचाल, जो सबको कँपा देता है—
और फिर सब शान्त-शान्त हो जाता है!!
धरती पर नजरें जमाये,
जब तुम्हारी आँखें थकी हैं—
तो अपनी बोझिल पलकें तुमने आकाश पर टिका दी हैं,
आकाश—
जो शून्य है,
धरती की तरह, आकाश का अन्तराल भी—
एक अनबूझ पहेली है।
आकाश की ऊँचाई,
कल्पनाओं का प्रतीक है,
धरती की गहराई
निराशा का गीत है—

धरती और आकाश के बीच का एक स्तर है,
वही अपने जीवन का, शुद्ध और मधुर स्वर है
काश ! तुमने देखा होता,
इस ठोस धरती के सीने पर,
खुशनुमाँ फूल भी खिलते हैं–
और इन फूलों को खिलने के लिये,
आकाश के सूरज की धूप की ज़रूरत है–
और फिर एक खास मौसम में,
फूल–जो धूप बिना जी ही नहीं सकता
उसी धूप की तपिश, फूल को झुलसा देती है—
यह सही है,
कि इस चमन में खिजाँ आती है,
पर हर खिजाँ के बाद—
बहार इस चमन को दुलराती है।
यह कोई पहेली नहीं,
तेरे मेरे समान स्तर के जीवन का चलन है ।।
एक बार नजरें, जमीन से उठा डालो,
एक बार पलकें, आकाश से झुका डालो,
और तब सचमुच तुम्हें लगेगा कि—
सुख और दुख में कोई फासला नहीं है
प्यार, बेरुखी का, कोई मामला नहीं है ।।

दिशा ?

डी० एम० लड्ढा

कुमारी शिक्षा ने,
प्रीति भोज का आयोजन किया है !
सहेलियों में,
'मिस हड़ताल',
'सुश्री धरना देवी',
एवं,
मित्रों में–'मिस्टर विद्रोह कान्त',
'राय इन्कलाबसिंह',
'श्री घेरावकुमार',
आदि, विशेष निमन्त्रित हैं ।

वार्ता का प्रथम चरण,
चलने को था,
कि,
'होस्टेस शिक्षा' ने सुझाया,
क्यों न, डिनर के बाद,
'हरे कृष्णा–हरे राम' का दौर चले ?
सब सहमत थे ।
पर, इतने में,
मिस 'बुद्धिबाला' आ पड़ी,
सिर पटका,
झुंझला कर बोली,
माँ शारदे ! इन्हें 'दिशा' तो सुझा !

प्रसंग वश

हनुमान प्रसाद बोह

बोझिल सुवह से
धुंधली शाम तक
जन्म सिद्धान्तों, नये नियमों का
कागजों से फाइलों तक
भार मौन अस्तित्व पर
भ्रमित, भीत व्यक्तित्व पर
पंगु वनकर बोझ लादते हैं
अनाम गलियों के गीत गाते हैं
जिनसे बोर होकर
विद्यार्थी दैत्याकर चित्र बनाते हैं
प्रसंग वश चीखते हैं सृजन के स्वर
प्रसंग वश मुर्दे जगाते हैं,

शाम

उदासीन नीड़ों पर उतर आई शाम
जैसे दीर्घ पंक्ति के मध्य में विराम
बागों में कलियों का विखरा उन्माद
यौवन पर चढ़ आया रेशमी प्रसाद
नाच रहीं सरिता में लहरें सुनृत्यका
चंचला स्वर लहरी से गूंजी उपत्यका।
कर रही शृंगार निशा, छूटा आराम
उदासीन नीड़ों पर उतर आई शाम।
वल्लरियां सिमटाये आंचल हरित
हलचल पर प्रतिवंध, लाज आवरित
मौन सभा सा गुमसुम उपवन सभीत
जैसे होकर बैठा, सावन से प्रीत।
हौले-हौले गुनगुनाये, भंवरा वदनाम

अंधेरी रात

ओम केवलिया

अँधेरी रात
जैट ब्लैक-सी काली
श्वेत परिधानों में
चले जा रहे व्यक्ति
सफेद कफ़नों में
लिपटे सिमटे
लाशों से पड़ते हैं दिखलाई।
सन्नाटा है
पत्तों के टकराने,
गिर जाने की आवाज़
आ जाती है कहीं-कहीं से।
लगता है जैसे 'कफर्यू आर्डर' है
या
'एयर रेड' की आशंका से
सहम गया है सब कुछ

दो कविताएँ

गोविन्द कल्ला

सर्वाधिकार

भावों के स्क्रैप टुकड़ों को
शब्दों से वेल्ट कर,
लिख लाया कवि
एक गीत, धन्यवाद।
बोला—
कृपया, पारिश्रमिक देकर
छुड़ा लीजिये अपना माल—
मुझे तो बेचना ही था इसे,
सर्वाधिकार आप सुरक्षित कीजिये
हमें तो दक्षिणा से दीक्षित कीजिये,
पेट आटे से भरता है,
धन्यवाद से नहीं।

(2)

खेदवाद

विरोधाभास

अफजल खाँ पठान 'अफजल'

क्या यह सच है कि—
एक देवता पर
दो या इससे अधिक
फूल चढ़ सकते हैं ?
पर एक फूल
किन्ही दो देवताओं पर
नहीं चढ़ सकता ।
फिर ये कैसा विरोधाभास कि
एक सुन्दर फूल
किसी एक देवता के सिर
जा चढ़ा ।
और जब मुरझा कर
चरणों में पहुँचा
तो किसी दूसरे देवता के सिर
जा चढ़ा ।
इसलिये कहता हूँ—
ए देवताओं सावधान
वह फूल यहीं आसपास है ।
और किसी तीसरे
देवता के सिर की उसे तलाश है ।

गणित की पढ़ाई

श्री मधुसूदन बंसल

गणित की पढ़ाई
भी क्या आनन्द है
कम लिखना, पर नम्बर पूरे लेना
बहुत हुआ तो दस में से सात आठ नहीं।
याद करने को
छोटे-छोटे चुटकुले
लम्बे-लम्बे ऊबा देने वाले, व्याख्यान नहीं।
कभी जाँचना भी हुआ तो भी सुविधा
तरीका थोड़ा देखा, उत्तर पर दृष्टि फेंकी,
और बस
तुले तुलाये नम्बर दे दिये।
व्यवहार में है,
दृढ़ अटल नियम वाली,
निश्चित नियम और निश्चित सूत्र,
फिर भी अपनी सामाजिकता नहीं छोड़ती।
"एक अभीष्ट लक्ष्य तक पहुँचने के अनेक मार्ग
(या विधियाँ) हो सकती हैं"
से सहमत है
भ्रष्टाचार और बेईमानी से दूर न रहें
तो समस्या का हल कोसों दूर चला जाता है
और इसके विपरीत
ईमानदारी और सूझ से काम लें
तो हल तुरन्त निकल आता है।
पर एक बात में शायद
दूसरे हमारा अहित समझें

पर ऐसा नहीं है,
हमें सूत्रों और तरीकों को
रोज रोज चाय पार्टी का निमन्त्रण देकर
सहलाना पड़ता है
समय हमारे पास कम बचता है
और इस तरह बचते हैं, फालतू बुरी बातें सोचने से।
अनियमित सेवक (छात्र)
इसे नहीं पा सकते।
मात्र लाल और हरी स्याही
फूल और पत्तियाँ
सजे हुए अक्षर
इसे खुश नहीं कर पाते
यह तो दो, और दो चार
बस, सही काम चाहती है
चिकनी चुपड़ी बातें नहीं।
इसके लम्बे और पेचदारी गए (प्रश्न)
आकर
हमारे आत्म विश्वास एवं तर्क को जगा जाते हैं,
बिना जिसके जग में
कहाँ है, सफलता ?
संसार के व्यापार व्यवहार में
यह घुलमिल गई है
अनुसंधान चाहे किसी क्षेत्र का हो
कि रीढ़ की हड्डी बन गई है
या यों कहो कि
इसमें अगुआ राष्ट्र की
विश्व में धाक जम गई है।

●

श्रद्धांजलि

मधूसूदन बंसल

नमन है मेरे देश के शहीदों को
जिनका वजन बढ़ गया था
उस दिन
जब उन्हें फाँसी के फंदे को
गले लगाने का सुअवसर मिला।
जो लाठियों व बेतों की
थपथपी खा सो गये
जो गोलियों की फुहार में
चिरमग्न हो गये।
जिनके मन माली ने
अपने जीवन बीज को
भूमिगत कर ध्वस्त कर दिया
देशवासियों को आम खिलाने के लिए
राष्ट्र में सदाबहार लाने के लिए
और भरने भव्य भावना।
श्रद्धा-पुष्प अर्पित हैं
उनके भी श्री-चरणों में
जिन्होंने
राष्ट्र का गौरव बढ़ाया
चिंतन मनन व कर्म से।

नुकीले प्रश्न और अंधी आवाजें

रामस्वरूप 'परेश'

कोर्स की किताब सा
अनचाहे
उलट पलट
टाल दिया दिन
मुंह फट सूरज ने दे दिया जवाब
नंगे अंधेरे की पीठ पर
कुहनियों के बल
सरकती
एक परिचित गंध
मग की मेज पर
खत कई खोलकर
सुधि के गुमनाम
तब लगा कि
प्रश्न मेरा—
आलपिन के नुकीले सिरे से
गत युगों से
बहुत तीखा है
बहुत.......।
तारों के चेहरों पर
मलकर भी
बच गई
ढेर सारी
मुट्ठीभर रात की गुलाल
प्रणय के—
आस्थाहीन/खुरदरे रेलिंग पर
उम्र की नंगी कुहनियां
हो गयीं बदनाम

और सारे आकाश का
शामियाना
भरी हुई महफिल में
मेरे ही कंधों पर
और अधिक लटक गया
शूली पर अटक गई सांस

अपने ही सीने की
अनबोली अर्थ भरी
धड़कन के कह कहे
भीड़ भरी वस्ती की
छिली हुई आवाजें पी गये

जुड़ने के यत्नों पर
चिंतन को टांगने
और अधिक टूट गया मैं

क्वांरी अनुभूति के
मक्खी के परों से
वहुत छोटा हो गया
अभिव्यक्ति का आकाश

पंजे पर खड़े हुए
प्रश्नों की कौड़ी सी आंखों से
बिंधा हुआ
अंधी आवाजों में
अपने को ढूंढ़ता
पत्थर का बुत

तब लगा कि
प्रश्न मेरा
आलपिन के नुकीले सिरे से
गत युगों से
वहुत तीखा है
वहुत तीखा

नौ रुबाइयाँ

नारायणकृष्ण पालीवाल 'अकेला'

(१)

हाला पीकर बहक जाता हूँ मैं
प्याला लेकर छलक जाता हूँ मैं
रूपबाला से तो दूर ही रहता हूँ
नाम सुन कर ही महक जाता हूँ मैं

(२)

हवा की एक मृदु लहर हो तुम
चाँदनी रात का प्रथम प्रहर हो तुम
कौन सा उपमान खोजूँ तुम्हारे लिए
उपमान के लिये भी उपमान हो तुम

(३)

तुम शरमाई सितारे टिमटिमाये
तुम अँगड़ाईं कलेजे भर आए
कई दिनों बाद तुम्हें हँसता देख
आँखों के आँसू रुके नहीं बह आए

(४)

जीवन तो सुन्दरता की ही एक कहानी है
मिलन विरह के आलिंगन की एक जवानी है
जो हँस ले जी भरकर जग में धन्य वही
माटी की यह देह कभी माटी बन जानी है

(५)

दिन में सितारे दिखाई नहीं देते हैं
रात में सूरज भी कहीं छुपकर चला जाता है
इसलिये कि कहीं जवानी भटक न जाय
बुढ़ापा मेहमान बनकर आ जाता है

(६)

लहर को किनारे की तलाश होती है
समन्दर को सरिता की प्यास होती है
यहाँ हर चीज अधूरी है इसीलिये
कवि को रसिक की तलाश होती है

(७)

किसी के खयालों में खोने से फायदा क्या
किसी की मुहब्बत में रोने से फायदा क्या
यहाँ कोई किसी का नही हैं दोस्त
आँखों से लहू टपकाने से फायदा क्या

(८)

आँखों में इक सागर उमड़ कर बरस जाया करता है
खयालों में इक इन्द्र धनुष तरस जाया करता है
मौसम ही रंगीला हो तो दोष किसे दूँ सनम
आसमां धरतीं से आँख मिलाया करता है

(९)

तू दूर रह कर भी बहुत नजदीक है मेरे
जैसे कोई किरन अँधेरे पर तेरे
क्या जरूरत है कि किसी और को देखूँ
तू मुझमें है और मैं सांसों में हूँ तेरे

ग्यारह मुक्तक

योगेन्द्रसिंह भाटी

(१)

इनसान अगर चे आफत का मारा हो जाए
जिंदगी मंझधार में यों बेकिनारा हो जाए
तो चाहिए उसे खुदी को बुलन्द करे इतना—
कि वो खुद ही असल में खुद का सहारा हो जाए ?

(२)

जो नित नये अरमाँ उगलता रहे, सीना कहते हैं
जो पिस कर भी रंग लाये, उसे हीना कहते हैं
ऐसी उमंग औ हसरत भरी जिन्दगी "योगी"
जीना उसी को हकीकत में जीना कहते हैं।

(३)

जियो तो यों जियो कि जिसे जीना कहते हैं
जिंदगी का जाम यों पियो कि जिसे पीना कहते हैं
गर मर मर कर जियो तो क्या जिया "योगी"
जिन्दा दिली से जियो तो जीना कहते हैं।

(४)

जिन्हें हार में जीत का अहसास नहीं होता
मावस में जिन्हें पूनों का भास नहीं होता
जो जीवन ही को अभिशाप समझ कोसा करते
उनका खुद अपने ही पर विश्वास नहीं होता।

(५)

दुख-दर्द ही हमें दुख-दर्द से लड़ना सिखाते हैं
सम्हल कर जिंदगी की राह खुद गढ़ना सिखाते हैं
सिखाते हैं वो हमको हकीकत में जिंदगी क्या है ?
कि अनुभव-पाठशाला में हमें पढ़ना सिखाते हैं।

(६)

जो जिन्दगी की राह पर बढ़ता रहा है
जो मंजिलें अपनी स्वयं गढ़ता रहा है
है वो ही असल में जिन्दगी का राजदाँ
तसवीर अपनी आप जो मढ़ता रहा है।

(७)

सुख की शैया पर जिन्दगी वहक जाती है
दुख की दहलीज पर जिंदगी चहक जाती है—
दुख वो खुशनुमा ख्वाब है जिनके दामन में
जिन्दगी फूलों सी महक महक जाती है।

(८)

चेहरे पर तुम्हारे लुनाई नहीं है
लगता है जिन्दगी रास आई नहीं है
रूठी है अगर जिन्दगी तो मना लो तुम–
जिन्दगी अपनी कोई पराई नहीं है।

(९)

हिम्मत हर गाफिल को गतिमान वना देती है
हिम्मत हर निर्बल को वलवान वना देती है
हिम्मत गर चाहे तो पत्थर को पानी कर दे–
हिम्मत हर मुशकिल को आसान वना देती है।

(१०)

खोजते रहने पर मिलते जरूर मोती
चलते रहने पर मंजिल भार नहीं होती
मेहनत वालों को मिलती आखिर मंजिल
कोशिश करने वालों की हार नहीं होती।

(११)

जिन्दगी मौत के इस पार है उस पार है
मौत को भी जिन्दगी दरकार है
जिन्दगी के दो सिरों के वीच में–
मौत वेचारी खड़ी मंझधार है।

मेरा ग़म हैं

रफ़ीक अहमद उसमानी

उनकी रुस्वाइयाँ मेरा गम हैं
शब की तन्हाइयाँ मेरा गम हैं
मुझको शिकवा नहीं जमाने से
मेरी नादानियाँ मेरा गम हैं
चुप हूँ कुछ सोच कर के महफ़िल में
चन्द मजबूरियाँ मेरा गम हैं
हँसते गुलशन पे क्या गिरी बिजली
इसकी वीरानियाँ मेरा गम हैं
वक्त का हर सितम गवारा है
दिल की गहराइयाँ मेरा गम हैं
साजे-दिल कैसे छेड़ दूँ यारो
इनकी बेताबियाँ मेरा गम हैं
सच जो पूछो 'रफ़ीक' से यारो
इसकी खामोशियाँ मेरा गम हैं

खास निगाहें मेरे पैमाने पर

हौसले बढ़ते हैं दुश्वारियाँ आ जाने पर
कश्तियाँ बहती हैं तूफाँ के सितम ढाने पर
कर के इक और सितम आग लगा दी तुमने
डाल कर खास निगाहें मेरे पैमाने पर
कैसे मिट जायेंगे इन्सान की फितरत के नक्श
हँसता इन्सान है इन्सान के मिट जाने पर
है अभी कुछ ना हुआ आओ मुसाफा कर लें
वरना पछताओगे फिर बात के बढ़ जाने पर
यूँ सितम ढाने की हिम्मत ही नहीं है तुम में
जानते हम हैं बड़े आप. के बहकाने पर
आलमे हिज्र ने कुछ ऐसा सताया कि 'रफ़ीक'
हो गया भूल से सजदा किसी मयखाने पर

मेरी खता

आपसे पर्दा करूँ मेरी खता
दीद को तरसा करूँ मेरी खता
सह रहा हूँ हर सितम इस दौर के
आपसे शिकवा करूँ मेरी खता
बेरुखी से डाल ली उसने नकाब
प्यार से देखा करूँ मेरी खता
आ गया तूफाँ किनारों के करीब
कश्तियाँ देखा करूँ मेरी खता
प्यार ने बख्शी मुझे तनहाइयाँ
बज्म का चर्चा करूँ मेरी खता
इन निगाहों का बता तूही 'रफीक'
ऐ ग़मे दिल क्या करूँ मेरी खता

नौ मुक्तक

(1)

(5) जितनी नज़दिकियाँ हों दो दिल में, उनका फिर कम विकार होता है
दूर जितने भी हों वो ए तोफीक, उनमें उतना ही प्यार होता है ।

(6) लव पे खामोशियों का पहरा है, उनका मायूस कुन-सा चेहरा है
मेरी नजरें ना कुछ समझ पाई, "उनकी खामोशी" राज़ गहरा है ।

(7) मेरी नाकामियाँ ही मेरे नदीम, जि़न्दगी का सहारा बन बैठीं
उलझी कश्ती के वास्ते जैसे, मौजें खुद ही किनारा बन बैठीं

तीन बिन्दु : तीन सिन्धु

भंवरसिंह सहवाल

(१)

कैसे सुनाऊँ दोस्त ! जिन्दगी की दास्ताँ,
जैसा जिगर मिला वैसी जुबाँ नहीं,

(२)

जीवन सफर में कुछ ऐसा हुआ साथी !
गुजरा नहीं राही, राहें गुजर गईं।

(३)

जलता तो है चिराग इस दिल का हर घड़ी,
यह कैसी बात है कि रोशनी नहीं।

(४)

बदला नहीं पाँखी, पाँखें बदल गईं,
बदला नहीं तरुवर, साखें बदल गईं,
मत पूछ मेरे दोस्त ! जिन्दगी की दास्ताँ,
बदला नहीं सपना, आँखें बदल गईं।

(५)

आज सवेरे के ख्वाबों को क्या हुआ,
उपवन में खिलते गुलाबों को क्या हुआ,
नशा कुछ आया ही नहीं ऐ मेरे साकी !
आंखों में ढलती शराबों को क्या हुआ ?

(६)

घिरते हुए अंधेरे कितने सघन हुए,
इन बस्तियों के घेरे कितने विजन हुए,
यह दिल तो मेरे दोस्त ! श्मशान है जिसमें
उठते हुए अरमान कितने दफन हुए।

चार मुक्तक

सुषमा चतुर्वेदी

(1)

आज तेरी याद मेरे दिल पर यूं छाई है
गोया आसमां पे काली, बदली घिर आई है
जिन्दगी पांव बिना दौड़ पड़ा मंजिल को,
मौत ने दूर कहीं, बांसुरी बजाई है ।।

(2)

उनकी आदत थी, जिसे मनुहार समझी,
मन का धोखा था, जिसे मैं प्यार समझी,
चाह कर ही क्या कभी कुछ मिल सका है ?
प्यार है वरदान, मैं अधिकार समझी ।।

(3)

तेरे हर ग़म का दर्द, अपने दिल में पाया है,
तेरे अश्कों को मेरे, होंठ ने सुखाया है–
अब इससे बढ़के तेरा, और करम क्या होगा,
तुझे गिला है मैंने, तेरा दिल दुखाया है ।।

(4)

आज की रात गले मिलके ज़रा रोने दे,
याद के दाग़ जो बाकी हैं, ज़रा धोने दे,
ऐ मेरे होश ! मुझे अब तलक जगाया है,
हो के मदहोश मुझे, आज ज़रा सोने दे ।।

चार रुबाइयाँ

रविशंकर भट्ट

(१)

गुनाहों को पनाह मत दो, उसके आदमी को सहलाओ
प्यार की हमनजर से देखो उसे प्यार में बहलाओ
इज्जत से डरो इज्जत आदमी को नूर होती है
ला सको रास्ते पर उस गुनाहगार को लाओ

(२)

कुछ चोरों ने चौकीदारी का जिम्मा लिया
कुछ सूदखोरों ने इन्सानियत का बीमा किया
इस जमाने की लहर बह रही है ऐसी
कि बद ने नेकी को कुचल निकमा किया

(३)

किसी की असमत की हँसी न उड़ाओ
किसी के किये गुनाहों को मत कुरेदो
इस उमर पर आदमी लड़खड़ाता है
दे सको दोस्त ! उसे सहारा दे दो

(४)

हर बुत कभी भगवान नहीं होता
गैर धरम को माने बे-ईमान नहीं होता
आदमी के बनने का अंदाज और है
केवल हाथ पैरों से कभी इन्सान नहीं होता

क्षणिकाएँ

सह अस्तित्व

मनमोहन झा

वह भी
मेरे ही जैसा
जहरीला साँप था
मैंने उसको ···और
उसने मुझको
डस लिया
हम दोनों में से कोई भी
नहीं मरा :
आखिर हमने
एक शान्ति समझौते पर
हस्ताक्षर कर दिये ।

ऑपोरच्युनिस्ट

बाढ़ में डूबते हुए
एक होशियार आदमी ने
एक तैरती हुई लाश देखी····तो
लकड़ी का लट्ठा छोड़ कर
लाश का सहारा ले लिया··· और
पार लग गया :
तट पर खड़ी हुई
हतप्रभ भीड़ को लाश दिखा कर
हाँफता हुआ बोला—
'मेरी चिन्ता मत करो
इसका इलाज करो
अपनी जान संकट में डालकर
बड़ी 'रिस्क' लेकर
इसे बचा कर यहां तक
लाया हूं ।'

दो तोहफ़े

गोविन्द कल्ला 'बरवा'

सूरज उगा कर
सवेरा लाने वाला
शाम को लौटता है
अपनी कमाई के
दो तोहफ़े लेकर—
बीवी के लिये महँगाई,
बच्चों के लिये भूख,
जिसे बाँट कर खाते हैं
बड़ी ईमानदारी से
ये लोग।

उलाहना

भँवरसिंह

व्यंग्य

नन्दकिशोर शर्मा 'स्नेही'

वादा

भाइयो और बहिनो,
मेरा वादा सुनो !
जो कहता हूँ, वह निभाता हूँ
इस बार, इतना ही—
विश्वास दिलाता हूँ !
या तो तुम्हारी गरीबी हटाऊँगा
नहीं तो मै भी गरीब बन जाऊँगा।'
सच निकली वह बात—
आये वो माँगने
ठीक पाँच साल बाद !
क्योंकि चुनाव की
पूरी हो गई मियाद !!

भाषण

नेताजी मंच पर आये
श्रोता न देख
खूब तिलमिलाये,
पर निगाह—
ज्योंही फोटोग्राफर पर पड़ी,
खिल गई उनके मन की कली !
तुरंत माइक पर आ गये—
भाषण पर भाषण झाड़ गये !!

केपिटलिस्ट

हनुमानप्रसाद बोहरा

अरे ओ रे भ्रमर !
कानून से तो डर
हरेक कली का रस पीता है अशिष्ट !
समाजवादी बाग में बनता है केपिटलिस्ट !

●

जिन्दगी

जीवन भर लिखता रहा
न बात हुई पूरी
हाय रे जिन्दगी
अधूरी की अधूरी ।

○

जीत

सभव है जीत
असंभव भी जीत
सफल नहीं होने पर
अनुभव है जीत• ।

C

प्रश्न

पुरुषोत्तम 'पल्लव'

रोज
हजारों मरते हैं,
शायद
जिन्दा
रहने से डरते हैं।

●

पुण्य

बहुत से
तीर्थ जाते हैं
पुण्य कमाते हैं
वो निरे बुद्धू हैं ?
जो चाँद पर जाकर
पत्थर ही लाते हैं !

●

सञ्चालक

रामेश्वरदयाल श्रीमाली

मिथ्या है चिन्तन
झूठा है तत्व-बोध
खोखला है दर्शन
निश्शब्द शब्दकोष
मृत है इन्सानियत
अमृत है मौत
सृष्टि का संचालक ईश्वर नहीं—
स्वार्थ है ।

नमस्कृत्य

आज इन्सानियत की
मातम पुर्सी है ।
नमस्कृत्य कहीं भी
इन्सान नहीं—
कुर्सी है ।

गीत तथा ग़ज़ल

गीत

गोपीनंदन पांडे

सपना संवर गया

हनुमान प्रसाद बोहरा

अलसाये यौवन की, कसमसाती बांहों में
गदराई चांदनी, तारों की छांहों में
मधुवन की तरुणाई, छेड़ गई तरुणाई
शरमाए नयनों की, रंग भरी अरुणाई

कुंकुम निखर गया, मद सा छलक गया
कचनारी काया पर, कंचन बरस गया
सपना संवर गया ।

आत्म-बोध

बी.एल. अरविंद

जीवन के खंडित और अखंडित कोणों से
सारा जग देख लिया फिर भी अनदेखा हूँ

कलियों से बागों तक मौसम को बहलाया
सूरज से संध्या तक मौसम को बहलाया
सीपी के अन्तस से गहराये सागर तक
सारा जल सोख लिया फिर भी मैं प्यासा हूँ

शब्दों ने कर डाला अर्थों को छिन्न-भिन्न
हार गये उत्तर सब जीता हर प्रश्न-चिन्ह
रेशम की हँसियों से चिथड़ों के आंसू तक
सारा रस भोग लिया फिर भी अनभोगा हूँ

बार बार दस्तक दी बहरे दरवाजों पर
बार बार फिसला मन चिकनी आवाजों पर
रंग भरे पलनों से सपनों के मरघट तक
सबको पहचान लिया फिर भी अनचीन्हा हूँ

संभव नहीं

तुम न थामो अब किरण की चाल को तम की डगर पर
फिसल जाये भोर यह संभव नहीं, संभव नहीं

रात ढलती जा रही है रोशनी के द्वार खोलो
आ गया है वक्त सबके आंसुओं का भार तोलो
टूटने दो पीढ़ियों के मौन को स्वच्छन्द लेकर
पिछड़ जाये भोर यह संभव नहीं, संभव नहीं

वन्दना के शोर-गुल में आस्थायें खो रही हैं
सीखचों में कैद होकर भावनायें रो रही हैं
तुम न बाँधो आदमी को मन्दिरों में, मस्जिदों में
बहक जाये देव यह संभव नहीं, संभव नहीं

बिजलियों के जाल में हर दीप की लौ घुट रही है
बन्द कमरों में हमारी संस्कृतियाँ लुट रही हैं
तुम न देखो हर गगन को इन धुमैले आइनों में
सिमट जाये नभ यह संभव नहीं, संभव नहीं

[illegible]नियों की बीन पर फुँकार भरते साँप हैं
आज सबकी रोटियों पर डालरों की छाप है
तुम न बरसाओ हमारी कुटियों को [illegible]
टिक जाये खून यह संभव नहीं, संभव नहीं—

○

प्यार बाँटते चलो

तुम अगर जवानियों को आग बाँटते चलो
कली-कली की साँस को पराग बाँटते चलो
और भाल-भाल को सुहाग बाँटते चलो
जिन्दगी की हर डगर नई बारात है

अभी लहू की बाढ़ फाल रक्त में सनी
क्रुद्ध भाल और मुट्ठियाँ तनी-तनी
जवाब मौन, उग रहे सवाल पर सवाल
गुँथी हुई है जाल चक्रव्यूह सी बनी

तुम अगर सवाल को जवाब बाँटते चलो
नग्न आस्थाओं को शबाब बाँटते चलो
और शूल-शूल को गुलाब बाँटते चलो
कारवाँ . बहार का तुम्हारे साथ है

अपने मन की तुम ही जानो

जगमोहन श्रोत्रिय

अपने मन की तुम ही जानो,
मेरे मन तस्वीर तुम्हारी।

(१)

जब से तुमने आँखें फेरी
पल भर मेरी आँख न सोई।
जब से तुमने ममता तोड़ी,
साँस-साँस है मेरी रोई।

अपने तन-मन की तुम जानो,
मेरे कण-कण पीर तुम्हारी।

अपने मन की तुम ही जानो,
मेरे मन तस्वीर तुम्हारी।

(२)

जब नभ के सूने आँगन में,
दीप जला कर रजनी धरती।
मेरे पीर भरे प्राणों में
प्राण ! तुम्हारी याद सिहरती।

जनम-जनम तक घेरे मुझको,
यह सुधि की प्राचीर तुम्हारी।

अपने मन की तुम ही जानो,
मेरे मन तस्वीर तुम्हारी।

(३)

तुम तो नभ की भाती गंगा,
मैं बुझती आँखों का पानी।
किसी सुकवि की कविता हो तुम,
मैं तो कोई गढ़ी कहानी।

मेरे सपनों की नगरी

मदन याज्ञिक

मेरे सपनों की नगरी को वीरान बना
तुम और किसी के सपनों का शृंगार बनो
मैं तो सपनों के खंडहर ही में जी लूंगा।

मैं भूल गया था सूरज चाँद–सितारों को
मैं भूल गया था भीड़ों औ' चौराहों को
बेसुधी तुम्हीं उपहार रूप में ले जाओ
मैं तो पीड़ा के दर्शन में ही जी लूंगा।

मैं मधु अधरारे आश्वासन से छला गया
मैं कम कजरारे अनुमोदन से छला गया
तुम और किसी को आश्वासन अनुमोदन दो
मैं तो टूटे अनुबंधों में ही जी लूंगा।

तेरी अंगड़ाई में ऊषाएँ भूल गया
तेरी परछाहीं में संध्याएँ भूल गया
ऊषाएँ तेरे सपनों को रंगीन करें
मैं तो बिखरी संध्याओं में ही जी लूंगा।

हर नई भोर तेरे नयनों में नित चमके
हर नई धूप दामन में नित दमके
हर रात पूर्णिमा, चंदा दीप जला जाये
मैं तो तारों के मूक रुदन में जी लूंगा।

मेरी आशाएं तेरा पायंदाज बने
मम आकांक्षाएं तेरा जीवन–साज बने
तुम नव वसन्त सा नवजीवन आरंभ करो
मैं तो पतझर के क्रन्दन में ही जी लूंगा।

●

रंगीन-इरादे

मुख्तार टोंकी

कदम अभी बढ़ाऊँगा मैं बहरोबर पे छाऊँगा,
नजर में भर के हौसले सितारे तोड़ लाऊँगा,

अन्धेरे भाग जायेंगे !
मैं दीप वह जलाऊँगा

यह गौर कैसा दौर है, अदावतों का जोर है
जो नफरतें हैं जा बजां तो दुश्मनी का तौर है
मिटाऊँगा यह तौर मैं यह काम कर दिखाऊँगा
प्यार के तरीके से दिलों को अब मिलाऊँगा
मैं जिन्दगी के साज पर वफ़ा के गीत गाऊँगा

अन्धेरे भाग जायेंगे
मैं दीप वह जलाऊँगा

हर इक गलत रिवाज को पुराने अब मिज़ाज को
वक्त के तकाजे पर बदलना है समाज को
बन्दिशें क़दीम सब तमाम रस्में छोड़ के
भुला के याद माजी की रिवायतों को तोड़ के
हयात के निजाम में इक इन्क़िलाब लाऊँगा

अन्धेरे भाग जायेंगे
मैं दीप वह जलाऊँगा

यहाँ तो ग़म के पहरे हैं यहाँ तो जख्म गहरे हैं
गमों की धूप में तपे बुझे बुझे से चहरे हैं
यहाँ तो दिल उदास हैं खुशी कहाँ दिमाग़ों में
यहाँ चमन उजाड़ है नहीं है फल बाग़ों में
यह खार मुस्करायेंगे बहार बन के छाऊँगा

अन्धेरे भाग जायेंगे
मैं दीप वह जलाऊँगा

दुनियां पे जंग छायी है यहाँ वहाँ लड़ाई है
फसाद-व-फितने है बपा दुहायी है, दुहायी है
जंग की घटाओं को न अब बरसने दूंगा मैं
जंगलीपन की यह रविश मिटा के अब रहूँगा मैं
अम्न के परिन्दे को तलाश करके लाऊँगा

अन्धेरे भाग जायेंगे
मैं दीप वह जलाऊँगा

यह धरती मुस्करायेगी
फ़िज़ा भी गुनगुनायेगी
खुशी के नग़मे छेड़ने
कोई परी तो आयेगी
लजायेगी यह चांदनी
जो उसका नूर बिखरेगा
जिन्दगी के चेहरे का
जरूर हुस्न निखरेगा
ख्वाब के जंजीरों से
वही परी बुलाऊंगा
अन्धेरे भाग जायेंगे
मैं दीप वह जलाऊँगा !

ग़ज़ल

यूं नार को भी नूर बनाते रहेंगे हम
आतिश कदों में फूल खिलाते रहेंगे हम
तारीकियों का हुस्न बढ़ाते रहेंगे हम
हर सू चिराग दिल के जलाते रहेंगे हम
जलवे तुम्हारे रुख से चुराते रहेंगे हम
इस दिल को आफ़ताब बनाते रहेंगे हम
काँटे रविश रविश पे बिछाये कोई हज़ार
आँखें क़दम क़दम पे बिछाते रहेंगे हम
एहसान बिजलियों का उठाया न जायेगा
खुद आशियाँ में आग लगाते रहेंगे हम
सहरा को आबलों से बना लेंगे हम चमन
काँटों की भी प्यास बुझाते रहेंगे हम
गंगोजमन की आबरू रखना है लाज़मी
दरिया यह आँसुओं का बहाते रहेंगे हम
करते रहेंगे प्यार तनफ्फुर पसंद को !
आँधी में भी चिराग जलाते रहेंगे हम
तीरे निगाहे नाज़ का रखना है अब भरम
हँसते रहेंगे, जख्म भी, खाते रहेंगे हम
'मुख्तार' इक नज़र से कोई देख ले इधर
हँसकर गमे जमाना उठाते रहेंगे हम

बस्ती तक बढ़ आई सागर की प्यास

बलवीरसिंह 'करुण'

बस्ती तक बढ़ आई सागर की प्यास।
गलियों में घूम रहा भूखा आकाश॥
संस्कृतियों ! सावधान
जागृतियों ! सावधान
ग्रस न जाय जीवन को कोई खग्रास।
बस्ती तक बढ़ आई सागर की प्यास॥
धुरियों को ढूँढ रहे भटके अस्तित्व।
पारे से बिखर गये खंडित व्यक्तित्व॥
अपनापन भूल रहे जीवन के बोध।
मिथ्या के शिविरों में सत्यों का शोध॥
सुकृतियों ! सावधान
दुष्कृतियों ! सावधान
अधिक-अधिक गहराते ध्वंसों के पाश।
बस्ती तक बढ़ आई सागर की प्यास॥
सर्वनाश अँकुवाया सृजनों के खेत।
नावों को निगल रही कूलों की रेत॥
बढ़ते ही जाते हैं नागों के वंश।
सृजन-बीज बोते, उगता विध्वंस॥
दृढ़व्रतियों ! सावधान
ओ वृतियों ! सावधान
चन्दन वन छोड़ रहे जहरीली साँस।
बस्ती तक बढ़ आई सागर की प्यास॥
अम्बर पर लिखते हैं अपने ही नाम।
अपनी ही बोली पर खुद का नीलाम॥
अपनी ही गर्दन पर अपने ही वार।
कौन यहाँ जीत रहा, कौन रहा हार॥
युगरथियों ! सावधान
सन्मतियों ! सावधान
बच न जाय जीवन को युग का सन्त्रास।
बस्ती तक बढ़ आई सागर की प्यास॥

बाहर से हम सजे सजे हैं

कुन्दनसिंह सजल

बाहर से हम सजे सजे हैं, भीतर हैं, खाली घर से।
महल बनाने की आशा में, गुजर रहे हैं खण्डहर से ॥

सच के दर्शन करने को, हम झूठ ओढ़ कर चलते हैं,
एक झूठ को सच करने, हम सौ-सौ भेष बदलते हैं,
विष का जहाँ प्रदर्शन होता, लेबल चिपका अमृत का—
उसी सभ्यता की नगरी में, हम जीते हैं, पलते हैं।
हम संस्कृति को सींच रहे हैं, संस्कार ले विषधर से।
बाहर से हम सजे सजे हैं, भीतर हैं, खाली घर से ॥१॥

हम प्रकाश में बैठे बैठे, तम का ताना बुनते हैं,
ज्ञान-कथा में, प्रेम-कथा का, स्वर सचेत हो, सुनते हैं,
फूलों के पर्दे में होते हैं, कांटे नीलाम जहां—
हम सुन्दरता के अभिलाषी, ऐसे उपवन चुनते हैं।
मधुमासों का स्वागत करते हम सज-धज कर पतझड़ से।
बाहर से हम सजे सजे हैं, भीतर हैं, खाली घर से ॥२॥

मुहर लगाकर धर्मों की, हम बेच रहे हैं पापों को,
प्रायश्चित का ढोंग रचाकर, हम ढोते अभिशापों को,
आत्म-हनन करके अपना, हम आत्म-तोष करने वाले—
अपनी सुविधा के हित हम, गढ़ते सामाजिक मापों को।
ऊपर से नियमों के हामी, और विरोधी अन्तर से।
बाहर से हम सजे सजे हैं, भीतर हैं, खाली घर से ॥३॥

उलझन हर निर्णय लगता है

सब संकल्प निभाऊँ, ऐसा सोच रोज घर से चलता हूँ–
लेकिन मंजिल से पहले ही, उलझन हर निर्णय लगता है।
सोचा था, सच के पलड़ों में ही, जग के रिश्ते तोलूँगा,
जो उतरेगा खरा उसी के आगे अपना दिल खोलूँगा,
नहीं झूँठ के बाटों कोई चीज खरीदूँगा गैरों से–
बेचूँगा तो सच बेचूँगा, बोलूँगा तो सच बोलूँगा।
इन्हीं विचारों से, भावों से, सौदा करके घर लौटा हूँ–
लेकिन घर आते आते ही झूँठ क्रय-विक्रय लगता है ॥१॥

मुक्त करूँगा तम की कारा से प्रकाश की पावन धारा,
कोई मावस होगी नहीं, किसी पूनम की खातिर कारा,
रात आबनूसी विहान को, नहीं राह में रोक सकेगी–
और नहीं भटका पायेगा, अब सूरज को भी अँधियारा।
दृढ़ प्रतिज्ञ, दिनकर को अपने हाथो में लेकर बढ़ता हूँ–
लेकिन मेरे सूरज को अज्ञान तिमिर से भय लगता है ॥२॥

नहीं धर्म को पातक के हाथों नीलामी होने दूँगा,
सदाचार को नहीं लोभ का, मैं अनुगामी होने दूँगा,
बीत गया जो उससे आगे कभी नहीं अपने ईश्वर की–
मंदिर मस्जिद, गुरुद्वारे में, बदनामी होने दूँगा।
ऐसा तय कर परिवर्तन के दौर शुरू करने से पहले–
धर्म स्थान पाप के अड्डे, धर्म मुझे संशय लगता है ॥३॥

ाजल

अफजल खां पठान

किसी बेवफा की वफाई में आकर ।
मिला दर्दे दिल सब कुछ लुटा कर ॥

आशियाना जलता मेरा देख कर वो ।
सिमट कर वो निकले दामन बचाकर ॥

हालत पे मेरी तरस कुछ न आया ।
गये मुँह को फेरे वो आँखें चुराकर ॥

मुकद्दर ही अपना कुछ ऐसा लिखा था ।
डूबेगी किश्ती किनारा दिखा कर ॥

जब कयामत के दिन ही पूछेगा 'अफजल' ।
मिला उनको क्या मेरी दुनिया मिटाकर ॥

गीत लिखूँ क्या ?

शंकर 'क्रन्दन'

यह माना तुम ही जीते पर तुम्हें तुम्हारी जीत लिखूँ क्या ?

और पराजय अपनी लिखकर,
क्या पौरुष को हार सिखा दूँ,
पीछे आने वाले जग को
भूलों का संसार दिखा दूँ !

हास-रुदन के परे लिखूँ तो जीवन के विपरीत लिखूँ क्या ?
गीत लिखूँ क्या ?

मैं तो चित्रित करना चाहूं,
जग-जीवन की विस्तृत-सूची,
पर बरबस मेरा अपना ही
चित्र बना देती है कूची !

इस अधूरे जीवन-पट पर तेरा नाम पुनीत लिखूं क्या ?
गीत लिखूं क्या !

किसी मिलन के मौन-दोल पर,
किसी विरह की व्यथा झुलाकर,
अपने ही चिर-स्नेह-दीप में !

आज तुम्हारे विस्मृति-तट से तुमको मेरे गीत लिखूं क्या ?
गीत लिखूं क्या ?

⊙

कवि परिचय

अफजल खाँ पठान, रा. उ. मा. वि. कांकरोली; अतीक अहमद उसमानी, रा. उ. मा. वि. मोलासर, नागौर; अर्जुन अरविंद, काली पल्टन रोड, टोंक; अरनी राबर्ट्स, रा. उ. मा. वि. घाटोल, बांसवाड़ा; ओम केवलिया, अनुदेशक, एस टी. सी. बीकानेर; ओमप्रकाश भाटी, रा. उ मा. वि., मकराना, नागौर; कमर मेवाड़ी, चाँदपोल, कांकरोली, उदयपुर; कुन्दनसिंह सजल, रा. मा. वि., गुरारा, खंडेला, सीकर; गोपालकृष्ण लाटा, रा. उ. मा. वि, सुजानगढ़; गोपीलाल दवे, हनवंत उ. मा. वि., पाल रोड, जोधपुर; गोविन्द कल्ला, जयनारायण व्यास कन्या विद्यालय के सामने, जालप मोहल्ला, जोधपुर; गौरीशंकर आर्य; जगदीश उज्ज्वल; जगदीश सुदामा, श्रीकृष्ण निकुंज, भाटियानी चोहटा, उदयपुर; जगमोहन श्रोत्रिय, एम. एम. बी. मा. वि., अजमेर; डी. एम. लड्ढा, ५६/२६, प्रेम नगर, नई बस्ती, रामगंज, अजमेर; देवेन्द्रसिंह पुंडीर, रा. उ. मा. वि., बहरोड, अलवर; धनराज, रा. उ. मा. वि., महिलाबाग, जोधपुर; नन्दकिशोर शर्मा, 'स्नेही', रा. उ मा. वि., गुमानपुरा, कोटा; नन्दन चतुर्वेदी, रा. उ. मा. वि. गुमानपुरा, कोटा; नारायणकृष्ण पालीवाल, रा. उ. मा. वि., मोही, उदयपुर; पुरुषोत्तम 'पल्लव', रा प्रा. वि., बडारड़ा, राजसमंद, उदयपुर; प्रेमचन्द कुलीन, रा. उ. प्रा. वि., १७/२५२, ब्रजराजपुरा, कोटा–६; बजरंगलाल विकल, उ मा.वि, लाखेरी, बूँदी; बलवीरसिंह करुण, रा.उ मा वि., हरसोली, अलवर; बी. एल. अरविन्द, उ. मा. वि. भवानीमण्डी, कोटा; ब्रजेश चंचल, शारदा सदन, ब्रजराजपुरा, कोटा; भंवरसिंह, प्रधानाध्यापक, रा.उ प्रा. वि., नांद, अजमेर; भँवरसिंह सहवाल, अनुदेशक, एस.टी.सी., मसूदा, अजमेर; भगवतीलाल जोशी, रा.उ.मा. वि., आसीन्द, भीलवाड़ा; भगवतीलाल व्यास, उ.मा.वि., विद्याभवन, उदयपुर; भगवन्तराव गाजरे, उ.मा.वि., निम्बाहेड़ा, चित्तौड़; मणि बावरा; मधुसूदन बंसल, रा. उ. मा. वि., परबतसर, नागौर; मनमोहन झा, नागरवाड़ा, बांसवाड़ा; महावीरप्रसाद शर्मा, रा.प्रा.वि., गोरीर, झुंझुनू; मुख्तार टोंकी, रा.उ.मा.वि., नागौर; मोड़सिंह मृगेन्द्र, गांव थोरिया, वाया चारभुजा, उदयपुर; योगेन्द्रसिंह भाटी, रा.उ.मा.

सेमलवाड़ा, डूंगरपुर; रघुवीरसिंह करुण; रफीक अहमद उसमानी, रा. उ. मा. वि., कुचामन सिटी; रविशंकर भट्ट, शिक्षा प्रसार अधिकारी, वनेड़ा, भीलवाड़ा; राजेन्द्र वोहरा, रा उ. प्रा. वि. रेजीडेन्सी, जोधपुर; रामस्वरूप परेश, बी.एल प्रा वि., वगड़, पाली; रामेश्वर दयाल श्रीमाली, रा. उ. मा. वि., सांथू, जालोर; विश्वेश्वर शर्मा, श्रीकृष्ण निकुंज, भटियानी चोहटा, उदयपुर; शंकर 'क्रंदन', रा मा. वि., अम्वामाता, उदयपुर; श्रीमती आशादेवी शर्मा, द्वारिकादास वालिका विद्यालय, मलसीसर, झुँझुँनू; श्रीमती वीणा गुप्ता, १२/४५, भैरुगली, रामपुरा, कोटा; सांवर दइया द्वारा कानीराम सागरमल, दयानन्द मार्ग, वीकानेर; सुषमा चतुर्वेदी, ई–गाँधीनगर, जयपुर–४; सोहनलाल गार्गिया रा. उ. मा. वि. नसीरावाद; हनुमान प्रसाद वोहरा, भारत प्रिंटिंग प्रेस, टोंक; मदन याज्ञिक, पीरामल उ.मा.वि., वगड़, पाली।